विशेषांक

UPBIL 04831

मूल्य ₹100

संस्कृति, साहित्य, अध्यात्म और जीवन दर्शन की मासिक द्विभाषी पत्रिका

संस्कृति पर्व

Sanskritiparva

सनातन विश्व

विदेश के लिए मूल्य : $10

ऐश्प्रा
जेम्स एण्ड ज्वेल्स
हरी प्रसाद गोपी कृष्ण सराफ प्रा. लि. वेन्चर
गोरखपुर: गोपी गली, हिन्दी बाज़ार । ऐश्प्रा क्रासिंग, पार्क रोड
TOLL FREE : 1800 120 1299 • देवरिया | पडरौना | बस्ती | बलिया | आजमगढ़ | लखनऊ | मुम्बई •
AISSHPRA JEWELLERY

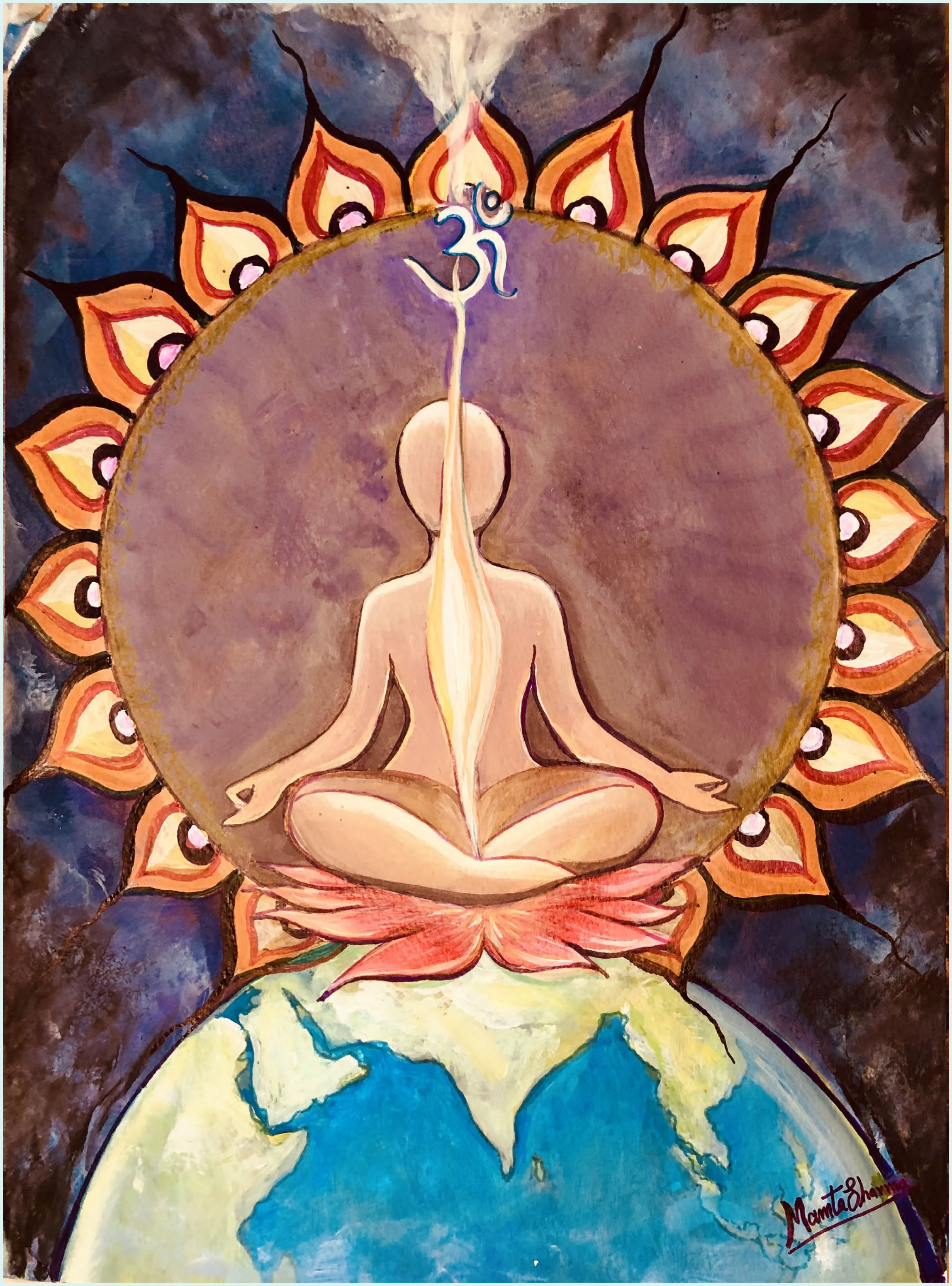

Mamta sharma

Mamta sharma is a published author-poet, Artist, Sculptor and lives in San Diego, California, USA. Busy with upcoming book and art projects.

अनुक्रमणिका

क्रम संख्या	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ सं०
01	सनातन से ही विश्व की सभी संस्कृतियों की उत्पत्ति	स्वामी जीतेन्द्रानंद सरस्वती	14
02	शब्द संसार की गंगोत्री भारतीय ज्ञान परंपरा	प्रो. राकेश कुमार उपाध्याय	22
03	विश्व मे मानवता की मूल सनातन संस्कृति	शिव प्रताप शुक्ल	26
04	अनादि, अनंत सनातन	डॉ सतीश द्विवेदी	40
05	भारतबोध का नया समय	प्रो. संजय द्विवेदी	44
06	मातृ शक्ति के सनातन सत्य को स्वीकार करता विश्व	डॉ अर्चना तिवारी	46
07	अनाहत चक्र से प्रेरित है यहूदियों का स्टार ऑफ डेविड	अरुण प्रकाश	52
08	अजरबैजान : भगवान का घर	कृष्णकांत उपाध्याय	54
09	चातुर्मासः शास्त्र और लोकपरंपरा	प्रो. राकेश कुमार उपाध्याय	57
10	सनातन : तार्किकता की विचारसरणी	कमलेश कमल	58
11	संस्कृत ग्रंथों में विज्ञान	डॉ आराधना उपाध्याय	64
12	भारतीय संस्कृति का अनोखा स्वरुप	डॉ. अर्चना पाठ्या	66
13	सनातन सचेतक भाई जी हनुमान प्रसाद पोद्दार	प्रो.हिमांशु चतुर्वेदी	70
14	समदर्शी दर्शन	कैप्टन सुभाष ओझा	76
15	सृष्टि, संस्कृति और प्रकृति	अनिता अग्रवाल	80
16	अंतिम संस्कार के लिए लकड़ी बैंक	संजय मानव	82
17	काव्य फलक	डॉ. भुवन मोहिनी, प्रियांशु गजेन्द्र, जे.बी. अनुराग, विक्रमादित्य सिंह, डॉ. सीमा त्रिपाठी	86-87
18	नई पीढ़ी को बताइए	शशि पाण्डेय	88

पाठकों से

संस्कृति पर्व का यह विशेष अंक आपके हाथों में है। इस अंक के लिये चित्रों का संकलन गूगल से किया गया है जिसके लिए हम उन सभी छायाकारों के प्रति कृतज्ञ हैं। इस अंक मे संभव है कि संपादन अथवा संयोजन में कुछ त्रुटियां रह गयी हों इसलिए हम अपने सुधी पाठकों से अपेक्षा करते हैं कि वे त्रुटियों को नजरअंदाज करेंगें। यह अंक आपको कैसा लगा इस बारे में हमें अपने विचारों से अवश्य अवगत कराईएगा। सनातन संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन में आपका योगदान अत्यंत मूल्यवान है। – सम्पादक

प्रेरणा
परम पूज्य स्वामी अखण्डानंद जी महाराज
संत साहित्य मर्मज्ञ आचार्य परशुराम चतुर्वेदी
ब्रह्मर्षि रेवती रमण पाण्डेय

संस्कृति पर्व
Sanskritiparva

सनातन विश्व अंक
वर्ष-4 अंक-4 जुलाई - 2021

सनातन प्रकाश पुंज

जगद्गुरू स्वामी वासुदेवाचार्य जी स्वामी विद्याभास्कर जी महाराज

स्वामी जीतेन्द्रानंद सरस्वती जी
(महामंत्री, अखिल भारतीय संत समिति एवं गंगा महासभा)

जगद्गुरु स्वामी राघवाचार्य जी (श्री अयोध्या जी)

स्वामी राजकुमार दासजी (श्री अयोध्या जी)

संरक्षक

अतुल सराफ
(समाजसेवी, गोरखपुर)

विद्वत परिषद

प्रो० सभाजीत मिश्र - (पूर्व अध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, (गो०वि०वि०)
प्रो० दयानाथ त्रिपाठी - (पूर्व अध्यक्ष, आईसीएचआर, नई दिल्ली)
प्रो० संजय द्विवेदी - (निदेशक, भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली)
डॉ० लालता प्रसाद मिश्र - (वरिष्ठ अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, लखनऊ)
ए. पी. मिश्र -(अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, लखनऊ)
अमरनाथ सिंह -(समाजसेवी एवं आध्यात्मिक चिंतक)
प्रो० विनय कुमार पाण्डेय -(अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग का० हि० वि० वि०)
प्रो० रामदेव शुक्ल - (पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गो०वि०वि०)
प्रो० माता प्रसाद त्रिपाठी - (पूर्व अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास विभाग, गो०वि०वि०)
प्रो० नन्द किशोर पाण्डेय - (पूर्व अध्यक्ष, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा)
प्रो० सदानंद गुप्त - (कार्यकारी अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान)
श्री मनोजकांत - (सम्पादक राष्ट्रधर्म)
प्रो० अजित के चतुर्वेदी - (निदेशक, आईआईटी रुड़की)
प्रो० सुरेन्द्र दुबे - (पूर्व कुलपति, सिद्धार्थ वि०वि०)
प्रो० राजेन्द्र प्रसाद -(कुलपति, मगध विश्वविद्यालय)
श्री प्रफुल्ल केतकर - (सम्पादक, ऑर्गनाइजर)
श्री कृष्णकांत उपाध्याय - (सम्पादक,जनता टीवी, उ. प्र.)
डॉ० देवर्षि शर्मा - (लेखक एवं समाजसेवी, कानपुर)
डॉ० प्रदीप राव - (शिक्षाविद्, गोरखपुर)
प्रो० हिमांशु चतुर्वेदी - (इतिहास विभाग, गो०वि०वि०)
प्रो० राजेन्द्र सिंह - (पूर्व प्रतिकुलपति, (गो०वि०वि०)
श्री आर एल पाण्डेय - (शिक्षाविद् टेक्सास, अमेरिका)
डॉ० नरेश अग्रवाल - (वरिष्ठ बाल रोग विशेषज्ञ, गोरखपुर)
डॉ० आर० सी० श्रीवास्तव - (अवकाशप्राप्त आई०ए०एस०)
राकेश त्रिपाठी - (आई० आर० एस०)
भास्कर दूबे - (वरिष्ठ पत्रकार, लखनऊ)
डॉ० योगेश मिश्र - (समूह सम्पादक, अपना भारत/न्यूज ट्रैक, लखनऊ)

सलाहकार परिषद

अध्यक्ष
श्रीमती रेशमा एच सिंह, (नई दिल्ली)
विशिष्ट सदस्य
श्री कुणाल तिलक, (पुणे)
श्री अनीश गोखले, (बेंगलुरु)
श्री अंबरीष फडणवीस, (मुम्बई)
सदस्य
श्री अजय उपाध्याय
(वरिष्ठ पत्रकार, नई दिल्ली)
श्री सुजीत कुमार पाण्डेय
(वरिष्ठ पत्रकार, गोरखपुर)
डॉ० मुन्ना तिवारी
(बुन्देलखण्ड वि०वि० झांसी)
दयानंद पाण्डेय
(लेखक एवं पत्रकार)
डॉ पुनीत विसारिया
अध्यक्ष हिन्दी विभाग, बुंदेलखण्ड वि. वि., झांसी
डॉ० ममता त्रिपाठी (दिल्ली वि०वि०)
श्री सुनील जैन(एडवोकेट, इलाहाबाद)
डॉ. मिथिलेश तिवारी
(संगीतज्ञ, गोरखपुर)
आचार्य सोमदत्त द्विवेदी
(वाराणसी)
श्री हेमंत मिश्र
(निदेशक, एबीसी शिक्षा समूह)
श्री अजय शाही
(निदेशक, आरपीएम शिक्षा समूह)
डॉ० गजेन्द्रनाथ मिश्र
(निदेशक, आर०सी० मेमोरियल शिक्षा समूह)
श्री अरुणकांत त्रिपाठी
(सम्पादक, कमलज्योति, लखनऊ)
डॉ० मनोज कुमार श्रीवास्तव
(चिकित्सक एवं लेखक, वाराणसी)
डॉ० वाई के मद्धेशिया
(वरिष्ठ चिकित्सक, कुशीनगर)
श्री मंकेश्वरनाथ पाण्डेय
(सचिव, नेशनल एजुकेशनल सोसाईटी, गोरखपुर)
श्री दीप्तभानु डे (वरिष्ठ पत्रकार, गोरखपुर)
श्री रतिभान त्रिपाठी (वरिष्ठ पत्रकार, लखनऊ)
श्री मारकण्डेयमणि त्रिपाठी
(अध्यक्ष, प्रेस क्लब, गोरखपुर)
श्री पुरुषोत्तम तिवारी
(वरिष्ठ पत्रकार, कोलकाता)
श्री अनुपम सहाय
(वरिष्ठ अधिकारी, पीएनबी)
डॉ० रविकांत तिवारी(अमेरिका)
डॉ० राम शर्मा(शिक्षाविद्, मेरठ)
दिवाकर शर्मा(वरिष्ठ पत्रकार, शिवपुरी)
आमोदकांत मिश्र (वरिष्ठ पत्रकार, कुशीनगर)

प्रधान सम्पादक
श्री हनुमानजी महाराज

सम्पादकीय संरक्षक
आचार्य विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
(पूर्व अध्यक्ष, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली)

समूह सम्पादक
प्रो० राकेश कुमार उपाध्याय

प्रबंध सम्पादक
बी के मिश्र

सम्पादक
संजय तिवारी

कार्यकारी सम्पादक
डॉ० अर्चना तिवारी

संपादक विचार
दुर्गेश उपाध्याय

सहायक सम्पादक (हिन्दी)
डॉ० अनिता अग्रवाल

सहायक सम्पादक (अंग्रेजी)
डॉ० राजीव तिवारी

समन्वय सम्पादक
विक्रमादित्य सिंह

सम्पादकीय सलाहकार
डॉ. हितेश व्यास
कैप्टन सुभाष ओझा

सह सम्पादक
डॉ० दिनेशमणि त्रिपाठी
कमलेश कमल
गोविन्द पाराशर
डॉ० अर्चना पाठ्या

विशेष सम्पादकीय परामर्श
आचार्य लालमणि तिवारी
(गीता प्रेस, गोरखपुर)
श्री रसेन्दु फोगला
(गीता वाटिका, गोरखपुर)
श्री अजीत दुबे
(सदस्य साहित्य अकादमी, नई दिल्ली)

केन्द्र प्रभारी, अमेरिका
आचार्य रत्नदीप उपाध्याय

विधि सलाहकार
श्री अमिताभ चतुर्वेदी
(वरिष्ठ अधिवक्ता, नई दिल्ली)

लेखा परीक्षक
अरुण गुप्ता

लेआउट, ग्राफिक्स एवं डिजाइन
संजय मानव

सूचना तकनीक एवं प्रबंधन
उत्कर्ष तिवारी

क्रिएटिव
प्रकर्ष तिवारी
(shot by Inflict)

स्वामी, मुद्रक एवं प्रकाशक संजय तिवारी द्वारा स्वास्तिक ग्रफिक्स, महागनगर, लखनऊ उ०प्र० से मुद्रित एंव बी–64, आवास विकास कॉलोनी, सूरजकुण्ड, गोरखपुर, उ०प्र० से प्रकाशित

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के लिए संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। किसी भी प्रकार के न्यायिक विवाद का क्षेत्र गोरखपुर जिला न्यायालय के अधीन होगा।

पंजीकृत कार्यालय : बी-64, आवास विकास कालोनी, सूरजकुंड, गोरखपुर-273001
लखनऊ कार्यालय : 2/43, विजय खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ-226010
दिल्ली कार्यालय : बी-38 डिफेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली-110024
सम्पर्क - : + 91 94508 87186-87
USA Office : 17413 Blackhawk St| Granada Hills, CA 91344 USA
Cell: 1-818-815-9826

(भारत संस्कृति न्यास का प्रकल्प)

Mail us - editor.sanskritiparva@gmail.com
Website - www.bharatsanskritinyas.org
Follow us

।। श्रीरामानुजो विजयते यतिराजराजः।। ।। श्रीरामानुजो विजयते यतिराजराजः।।

।। श्रीमत्परांकुशपरकालयतिवरवरवरप्रतिवादिभीकरगुरुभ्यो नमः।।

श्रीमच्छ्रीभाष्यकारमतप्रतिपालकाचार्य परमतपोनिष्ठ विद्वत-वरिष्ठ अनन्तानन्तश्री समलंकृत पदवाक्यप्रमाणपारावारीण
श्रीअयोध्यास्थ कोसलेशसदनपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानुजाचार्य स्वामी श्रीवासुदेवाचार्य 'विद्याभास्कर' जी महाराज के चरणाश्रित

शास्त्रविद्वरेण्य अनन्तश्री विभूषित श्रीअयोध्यास्थ श्रीधामपीठाधीश्वर श्रीसम्प्रदायाचार्य

जगद्गुरु रामानुजाचार्य स्वामी श्रीराघवाचार्यजी महाराज

अध्यक्ष-श्रीरामलला सदन देवस्थान ट्रस्ट एवं रामवर्णाश्रम, रामकोट, जनपद-अयोध्या, उ.प्र.

आशीर्वाद

यह अत्यंत सुखद है कि भारत संस्कृति न्यास की मासिक पत्रिका संस्कृति पर्व का यह अंक सनातन विश्व को केंद्र में रख कर प्रकाशित हो रहा है। सृष्टि के आरंभ से अब की सनातन की यात्रा को रेखांकित और सुरुचि पूर्ण तरीके से उस पर शोध का यह प्रयास अत्यंत उचित और सराहनीय है। श्रुति, स्मृति, उपनिषद, पुराण, इतिहास और साहित्य की दृष्टि से सनातन की उपस्थिति पर ऐसे प्रकाशन और इसके प्रसारण से भावी पीढ़ी को निश्चय ही अत्यंत लाभ होगा। सृष्टि में पृथ्वी के किसी भी भूभाग पर कोई शिशु जन्म लेता है तो मूल रूप से उसकी उपस्थिति सनातन के साथ ही होती है । हम धरती के लोग उसके पोषण और पालन के साथ उसे पंथों और विविध उपासना पद्धतियों में विकसित कर देते हैं। पृथ्वी पर मानव की उपस्थिति का प्रारंभ ही सनातन से है। इसीलिए आधुनिक विश्व मे भी जहां जहां उत्खनन आदि के कार्य हो रहे हैं, सभी स्थानों से सनातन संस्कृति की उपस्थिति के आदि प्रमाण प्राप्त हो रहे हैं।

ऐसे समय मे भारत संस्कृति न्यास के अध्यक्ष और संस्कृति पर्व के संपादक श्री संजय तिवारी जी और उनकी संपादकीय परिषद का यह प्रयास अद्भुत है। ब्रह्मलीन भाई जी श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार के बाद यह सनातन के प्रकाशन का प्रयास भारत ही नही, विश्व मे सनातन संस्कृति के सम्मान की स्थापना में बहुत बड़ा योगदान है। मानव जीवन को शास्त्र सम्मत प्रशिक्षित करने की बहुत आवश्यकता है जिससे सनातन शास्त्रों की मर्यादा सुरक्षित रहे। इस दिशा में संस्कृति पर्व का प्रयास स्तुत्य है।

मैं संस्कृति पर्व के इस विशेष अंक की सफलता की कामना करता हूँ। मेरा आशीर्वाद सदैव इस योजना के साथ है।

।। जय श्री सीताराम।।

राघवाचार्य

प्रेरणा

सत्सङ्ग

कोई उद्वेग का प्रसंग आ जाय तो घबराना मत, धैर्य रखना। हमारे जीवन में जो उद्वेग के, घबराने के प्रसंग आते हैं, उनमें से 99 प्रतिशत तो अपने-आप ही शांत हो जाते हैं। अंधकार देखकर घबराना नहीं चाहिए। प्रतिकूल परिस्थिति में यह नहीं समझना चाहिए कि 'यह अब हमेशा के लिए आ गयी क्योंकि जो आता है सो जाता है। यह नियम है 'यह भी नहीं रहेगा'। अच्छे दिन आते हैं, ये नहीं रहेंगे। बुरे दिन आते हैं, ये नहीं रहेंगे। अच्छे दिन आयें तो फूल मत जाओ, यह भी धैर्य की कमी है । बुरे दिन आयें तो घबरा मत जाओ।

हमने एक महीने की पैदल यात्रा प्रारम्भ की। दो-तीन मील चलते-चलते मूसलाधार वर्षा होने लगी। चारों ओर पानी भर गया। बोले, 'अरे, पहले दिन ही ऐसा हुआ!' लेकिन फिर भी धैर्य बना रहा। एक दीपक दिखता था बड़ी दूर, उसकी सीध में चले गये। छप्पर मिल गया, सूखी जमीन मिल गयी। रात को पीने को दूध मिल गया। सो गये। दूसरे दिन सवेरे उठे और फिर क्रमशः 29 दिनों की यात्रा की। कहीं कोई विघ्न आया ही नहीं। अतः विघ्न-बाधाओं में धैर्य नहीं खोना चाहिए।

स्वामी अखण्डानंद सरस्वती

लोक कल्याण सेतु, मई 2018

शाश्वत सनातन

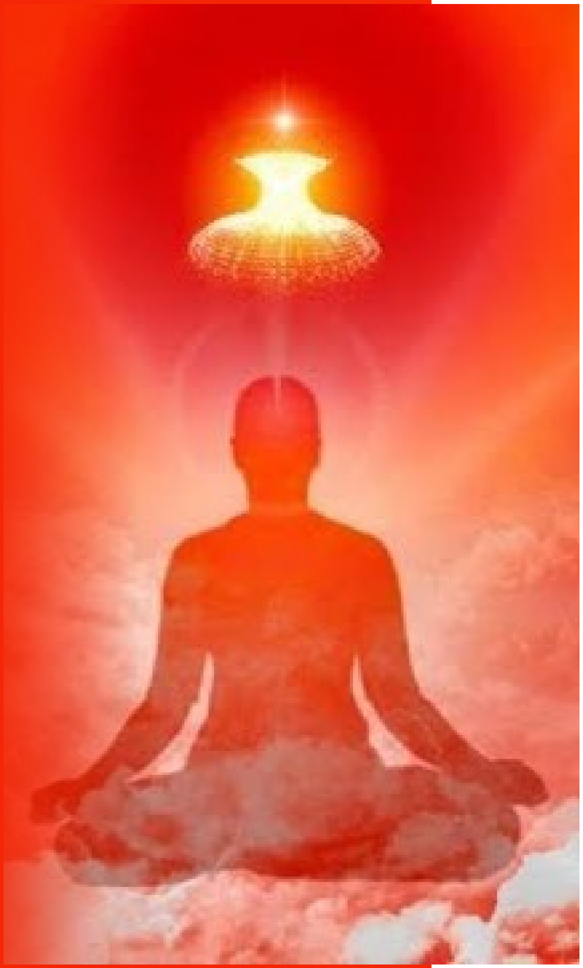

धर्म विशाल समुद्र है और पंथ , समुद्र में समाने वाली नदियाँ। सनातन ही सार है ,सनातन ही समुद्र है ,सनातन ही शाश्वत है । हर काल , हर भेद , हर युग ,हर बंधन से , हर व्याख्या से बहुत ऊपर । चिर शाश्वत सनातन वैदिक हिन्दू धर्म के अलावा अन्य सभी पंथों, सम्प्रदायों , मजहबों का जन्मदाता , प्रतिपादित करने वाला कोई न कोई व्यक्ति रहा है। सभी सम्प्रदायों , पंथों की कोई न कोई एक विशेष कोई न कोई पुस्तक है जिसका अनुसरण इनके अनुयायियों के लिए अनिवार्य किया गया है । सनातन वैदिक हिदू धर्म के लिए सृष्टि के कण कण में परमशक्ति नारायण की उपस्थिति है। सूर्य, चन्द्र ,धरती , नदियाँ ,पहाड़ , वन ,पशु ,पक्षी यानि प्रकृति का जड़ अथवा चेतन कोई कण ऐसा नहीं है जहां सनातन ईश्वर का निवास नहीं मानता समझता हो । संसार में धर्म केवल एक ही है जो शाश्वत है सनातन है।

ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति से जो चला आ रहा है , उसी का नाम सनातन है। इसके अतिरिक्त सब पन्थ , मजहब , रिलीजन मात्र है। श्रुति अर्थात वेद, स्मृति, अरण्यक,उपनिषद,श्रीमदभागवत गीता,रामायण,पुराण, महाभारत आदि विशुद्ध अध्यात्मिक और वैज्ञानिक ग्रंथ हैं। वेद पश्चिमी धर्म की परिभाषा तथा पंथ, संप्रदाय के विश्वास तथा दर्शन से परे शाश्वत सत्य ज्ञान के सागर हैं वेद। वेदों की रचना मानव को सत्य ज्ञान से परिचित कराने के लिए की गई है। वेद पंथ, संप्रदाय, मजहब, रिलीजन आदि का प्रतिनिधित्व न करके मानव जाति के कल्याण के लिए हैं।

संपादक

प्रबंध सम्पादक की कलम से

भारत की सनातन संस्कृति और इसका इतिहास अद्भुत है। यह सृष्टि के साथ ही यात्रा में है। इसीलिए वैश्विक भी है। यह विश्व की सभी सभ्यताओं का आधार है। इसकी वैश्विकता पर अब कोई संदेह नही है। आधुनिक विश्व मे इस विषय पर बहुत कुछ लिखा और प्रकाशित किया जा रहा है लेकिन बहुत कुछ ऐसा भी है जिसके बारे में सामान्य जन को कुछ ज्ञात नही है। संस्कृति पर्व अपने प्रत्येक अंक में ऐसे विषय लेकर प्रस्तुत होती है। इस बार सनातन विश्व जैसे विषय को केंद्र में रखा गया है। इसी विषय को लेकर संस्कृति पर्व की सम्पादकीय टीम ने यह विशेष अंक आयोजित किया है। इस अंक के आयोजन में भारत अध्ययन केंद्र , काशी हिंदू विश्वविद्यालय के अध्यक्ष आचार्य राकेश उपाध्याय जी का जो अप्रतिम योगदान रहा है उसके लिए हम कृतज्ञ हैं।

संस्कृति पर्व का यह अंक वास्तव में अतिविशिष्ट है। इस अंक की सामग्री विश्व मे सभ्यताओं के इतिहास के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। इसको पाकर हमारे पाठको की बहुत सी जिज्ञासाएं शांत भी होंगी और सभी को अपनी विरासत पर गर्व भी होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। इसके लिए संस्कृति पर्व की संपादकीय परिषद को हृदय से बधाई देता हूँ। विश्व मे सनातन इतिहास के ये अनछुए पन्ने नई पीढ़ी को अपने मूल से जोड़ने में अवश्य सफल होंगे। हमारे सुधी पाठको के लिए यह अंक अत्यंत रोचक और महत्वपूर्ण होगा। इन्ही शब्दो के साथ सभी के प्रति आभार।

आपकी प्रतिक्रियाएं हमे संबल देंगी।

बी के मिश्रा

सीयराममय सब जग जानी

संजय तिवारी

संस्कृति मूल है, इसमें कोई बाहरी परिवर्तन संभव ही नहीं है। जो भी परिवर्तन दिखता वह सभ्यताओं का आवरण होता है। ब्रम्हांड में प्रकृति की रचना के साथ ही उसके संस्कारों का निर्धारण हो जाता है, यही संस्कार प्रकृति के अलग -अलग अवययों के लिए अलग -अलग संस्कृतिओं का निर्माण करते हैं। जैसे पशुओं की अपनी संस्कृति होती है, पक्षिओं की अपनी, कीट-पतंगों की अपनी तो मनुष्यों की अपनी संस्कृति। मनुष्य जिस समाज का निर्माण करता है उस समाज से सभ्यतायें उत्पन्न होती हैं। ये सभ्यतायें ही मूल संस्कृति पर छाती हैं और अक्सर ऐसा लगने लगता है कि सभ्यता ही संस्कृति है, वस्तुतः ऐसा होता नहीं है। धर्म मूल है जिसे मनुष्य धारण करता है, वह प्रकृति सापेक्ष होता है इसलिए संस्कृति और धर्म सनातन है। मजहब, पंथ, सम्प्रदाय आदि गढ़े हुये हैं, इनकी उत्पत्ति सभ्तायें करती हैं। सभ्यताओं के साथ चलते हुये खुद के सनातन होने का आभास कराने लगते हैं। सनातन तो एक है, वह हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, बौद्ध, यहूदी या जीयूज नहीं हो सकता, उसे बाँटा नहीं जा सकता। इसी लिए भारतीय वांगमय जब भी कोई बात कहते हैं तो उनका आधार समस्त सृष्टि होती है। वसुधैव कुटुंबकम / विश्व बंधुत्व / विश्व कल्याण / विश्व सदभाव / विश्व चेतना इस सनातनता के वे वाक्य हैं जिन्हे भारतीय संस्कृति स्थापित करती है। संस्कृति का विभाजन संभव ही नहीं है क्योंकि कोई भी मनुष्य, सात महाद्वीपों के किसी कोने में रहता हो, उसकी भूख / प्यास / नींद / उसकी पीड़ा / उसका क्रोध / भीतर की दया / करुणा / क्षमा / प्रेम / मोह आदि समस्त गुण एक होते हैं। ये गुण उसी सनातन संस्कृति के अंश हैं। आवश्यकता इस बात की है कि पंथ , मजहब, सम्प्रदाय के नाम पर, उसके आवरण में छिपी सनातनता को बाहर निकला जाय। संस्कृति का काल-खंड के अनुरूप ज्ञान-विज्ञान के धरातल पर प्रवाह, अविरल करने हेतु वर्तमान को अवगत कराने के उपाय तलाशे जायें। अब आधुनिक विश्व इसी सनातन की जड़ों में खुद की तलाश करता दिख रहा है। सनातन की खोज ने आज दुनिया को हिंदुत्व की तरफ आकर्षित किया है।

सनातन संस्कृति से आधुनिक स्वरुप में विकसित हिन्दू सम्प्रदाय विश्व का एकमात्र सर्वोत्कृष्ट, सर्वोत्तम, सरल एवं सामंजस्य वादी सम्प्रदाय है जो प्रत्येक प्राणी में ईश्वर का दर्शन करता है और आज इसीलिये इस सम्प्रदाय में तैतीस कोटि यानी प्रकार के देवी देवताओं की पूजा की जाती है। सनातन की इसी वैश्विक दृष्टि की स्थापना गोस्वामी तुलसीदास जी ने दी जब उन्होंने श्रीराम चरित मानस में लिखा-

सीय राम मय सब जग जानी।

करउँ प्रणाम जोरि जुग पानी।।

यही नहीं, केवल मनुष्य ही नहीं बल्कि समस्त जीव समुदाय ही परमेश्वर का रूप है।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी- अर्थात पारब्रह्म परमात्मा का ही छोटा रूप जीवात्मा प्रत्येक शरीर धारी के अंदर है।

इसको तब और भी बल मिलता है जब हम पाते हैं कि आधुनिक विश्व की अन्य उपासना पद्धतियां या कहें कि शेष समस्त सम्प्रदाय या पंथ अपनी सर्वोच्च सत्ता को किसी एक जगह केंद्रित कर शेष जगत को उससे पृथक कर जीव और परमेश्वर में दूरियाँ पैदा करते है। इसीलिये वे खुद को सहिष्णुतावादी (Tolerating Attitude) कहते हैं क्योंकि वे शेष मतावलंबियों को भी किसी मजबूरी में सहते है--एक बोझ समझकर। इनकी तुलना में हिन्दू बहुत अधिक उदारवादी (Liberal) है, अर्थात इसके सागर से भी विशाल ह्रदय में जो भी आये, उसका हार्दिक स्वागत एवं अभिनन्दन है-

'किं नु इदम्महच्चित्रं यद्धिन्दुत्वमुपपोषति विश्वानि।'

वह सर्वे भवन्तु सुखिनः की बात करता है। विश्व के कल्याण की बात करता है। इस भावना को समझने की जरूरत है। सनातन , जिसे मूलतः भारत की संस्कृति कहा जाता है, यह वस्तुतः सृजन की संस्कृति है । यह जोड़ने की कला जानती है। जोड़ना ही सिखाती है और जोड़ जोड़ कर बहुत बड़ा बनाने की सीख भी देती है। बिना जोड़े या जुड़े कुछ भी बड़ा नहीं बन सकता । परमाणु से अणु। अणु से कोशिका, कोशिका से उत्तक , उत्तक से अंग, अंग से शरीर, शरीर से परिवार, परिवार से समाज, समाज से राष्ट्र और राष्ट्र से विश्व समुदाय तक के गठन की सांस्कारिक विधि है भारतीयता । इसमे कोई भी , कुछ भी अलग नहीं है ।सभी एक दूसरे से जुड़े है । केवल मनुष्य ही नहीं अपितु प्रकृति के प्रत्येक अवयव । सभी का एक दोसरे से अन्योंयास्त्रित सम्बन्ध भी है , बिलकुल सगे की तरह। कोई किसी से जुदा नहीं है ।सभी को मिल कर ही सृष्टि के संचालन का दायित्व है। सृष्टि में मनुष्य के सीधे सम्बन्ध स्थापित कराती भारतीय संस्कृति की यही सबसे बड़ी विशेषता भी है। यहाँ हरेक अवयव को बराबर का सम्मान है । मिट्टी के एक कण से लेकर सभी वनस्पतियों, नदियों , पर्वतो ,तालाबो , पोखरों , खेत , खलिहान , जंगल , झीलों , झरनों , कीट पतंगों आदि समस्त प्राकृतिक अवयव इसकी मूल अवधारण में सामान रूप से शामिल है ।सृष्टि में कुछ भी ऐसा नहीं जिसका इस संस्कृति में समायोजन और महत्व न हो।

वस्तुतः भारतीय संस्कृति की वैश्विक अवधारण लोगो को तब समझ में आने लगी है जब पश्चिम के कथित बुधिजीवियो ने दुनिया को सिमटते देखा है। उनकी आँखे तब खुली है जब तकनीक के विकास के साथ उन्होंने दुनिया को वास्तव में एक गाव ही पाया है । जब आज उनको यह दिखाई पड़ने लगा है की वास्तव में दुनिया तो बहुत छोटी है । इसके किसी कोने से किसी कोने में आज सेकेंडो में बात हो रही है । लोग एकदूसरे से आमने सामने होकर मिल रहे है और बात कर रहे है तब उम्हे भारत की उस उक्ति की सचाई का आभास हो रहा है जिसमे वैश्विकता सदियों से विराजमान है । विश्व वन्धुत्व की भारती अवधारणा के तत्त्व अब पश्चिम को भी सचे जन पड़ते है । भारती सनातन संस्कृति तो आदिकाल से ही विश्व के कल्याण की कामना करती रही है । यहाँ के प्रत्येक वांग्मय का सन्देश ही विश्व कल्याण के लिए रहा है क्योकि जब से हमारी संस्कृति है तब सृष्टि में केवल मनुष्य ही होता था । उसमे तब कोई हिन्दू, मुसलमान, यहूदी , इसाई आदि नहीं होता था । यह तो प्रामाणिक सत्य है की डॉ हजार साल से ही धरती पर इसाइयत है । केवल 1400 साल पहले ही इस्लाम आया है । यह तो इस्लाम और इसाइयत के अध्येताओ को भी जानने का विषय है की जब उनके मज़हब नहीं थे तब भी यह दुनिया थी । तब भी धरती पर मनुष्य रहता था । तब आखिर उस मनुष्य की कोई न कोई संस्कृति , सभ्यता जरूर रही होगी । ।इन सभी सवालो के जवाब केवल भारत और भारतीयता के पास ही है ।दुनिया की कोई और ऐसी जगह या सभ्यता है ही नहीं जो इन प्रश्नों का उत्तर दे सके ।

भारतीय संस्कृति की सहिष्णु प्रकृति ने उसे दीर्घ आयु और स्थायित्व प्रदान किया । संसार की किसी भी संस्कृति में शायद ही इतनी सहनशीलता हो, जितनी भारतीय संस्कृति में है। भारतीय चाहे किसी देवी - देवता की आराधना करें या न करें, पूजा-हवन करें या न करें, आदि स्वतंत्रताओं पर धर्म या संस्कृति के नाम पर कभी कोई बन्धन नहीं लगाये गए। इसीलिए प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रतीक सनातन धर्म को धर्म न कहकर कुछ मूल्यों पर आधारित एक जीवन-पद्धति की संज्ञा दी गई और इसका अभिप्राय किसी धर्म विशेष के अनुयायी से न लगाकर भारतीय से लगाया गया। भारतीय संस्कृति के इस लचीले स्वरूप में जब भी जड़ता की स्थिति निर्मित हुई तब किसी न किसी महापुरुष ने इसे गतिशीलता प्रदान कर इसकी सहिष्णुता को एक नई आभा देने का प्रयास किया । भारतीय संस्कृति की सहिष्णुता एवं उदारता के कारण उसमें एक ग्रहणशीलता की प्रवृत्ति को विकसित होने का अवसर मिला। वस्तुतः जिस संस्कृति में लोकतन्त्र एवं स्थायित्व के आधार व्यापक हों, उस

“ भारतीय संस्कृति की सहिष्णु प्रकृति ने उसे दीर्घ आयु और स्थायित्व प्रदान किया । संसार की किसी भी संस्कृति में शायद ही इतनी सहनशीलता हो, जितनी भारतीय संस्कृति में है। भारतीय चाहे किसी देवी - देवता की आराधना करें या न करें, पूजा-हवन करें या न करें, आदि स्वतंत्रताओं पर धर्म या संस्कृति के नाम पर कभी कोई बन्धन नहीं लगाये गए। इसीलिए प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रतीक सनातन धर्म को धर्म न कहकर कुछ मूल्यों पर आधारित एक जीवन-पद्धति की संज्ञा दी गई और इसका अभिप्राय किसी धर्म विशेष के अनुयायी से न लगाकर भारतीय से लगाया गया। ”

संस्कृति में ग्रहणशीलता की प्रवृत्ति स्वाभाविक रूप से ही उत्पन्न हो जाती है। और यह ग्रहण करने की हमारी ताकत वास्तव में हमारे लिए वरदान साबित हुई । हमारी इस ताकत का ही नतीजा है कि अनेक हमलो और आक्रमणों के बावजूद भारत और भारतीयता आज भी विश्व को मार्गदर्शन देने की अवस्था में है । ऐतहासिक तथ्यों से ज्ञात होता है कि भारत में इस्लामी संस्कृति का आगमन भी अरबों, तुर्कों और मुग़लों के माध्यम से हुआ। इसके बावजूद भारतीय संस्कृति का अपना ही अस्तित्व बना रहा , साथ ही नवागत संस्कृतियों से कुछ अच्छी बातें ग्रहण करने में भी भारतीय संस्कृति ने संकोच नहीं किया। ठीक यही स्थिति यूरोपीय जातियों के आने तथा ब्रिटिश साम्राज्य के कारण भारत में विकसित हुई ईसाई संस्कृति पर भी लागू होती है। यद्यपि ये संस्कृतियाँ अब भारतीय सभ्यता का ही अभिन्न अंग है, फिर भी 'भारतीय इस्लाम' एवं 'भारतीय ईसाई' सभ्यताओं का स्वरूप विश्व के अन्य इस्लामी और ईसाई धर्मावलम्बी देशों से कुछ भिन्न है। इस भिन्नता का मूलभूत कारण यह है कि भारत के अधिकांश मुसलमान और ईसाई मूलतः भारत भूमि के ही निवासी हैं। सम्भवतः इसीलिए उनके सामाजिक परिवेश और सांस्कृतिक आचरण में कोई परिवर्तन नहीं हो पाया और भारतीयता ही उनकी पहचान बन गई। आज दुनिया के अन्य देशो में जब भी भारत से कोई मुसलमान समुदाय से जाता है तो उसकी पहचान हिन्दू मुसलमान या भारतीय मुसलमान के रूप में ही की जाती है।

दरअसल जिस भौतिकता को आधार बनाकर पश्चिम की सभ्यताओ का विकास हुआ उस निरा भौतिकता से उपजी बेचैनी ने पश्चिम को तबाह कर दिया है । अब उन्हें भारत के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जैसे तत्वों में कुछ नया दिखता है और लगता है की यहाँ से शान्ति के द्वार मिल सकते है । क्योकि हमारी आश्रम व्यवस्था के साथ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जैसे चार पुरुषार्थों ने ही भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिकता के साथ भौतिकता का एक अदभुत समन्वय कर दिया । हमारी संस्कृति में जीवन के ऐहिक और पारलौकिक दोनों पहलुओं से धर्म को सम्बद्ध किया गया । धर्म हमारे यहाँ दायित्व है । इसे उन सिद्धान्तों, तत्त्वों और जीवन प्रणाली को कहते हैं, जिससे मानव जाति परमात्मा प्रदत्त शक्तियों के विकास से अपना लौकिक जीवन सुखी बना सके तथा मृत्यु के पश्चात जीवात्मा शान्ति का अनुभव कर सके । शरीर नश्वर है, आत्मा अमर है, यह अमरता मोक्ष से जुड़ी हुई है और यह मोक्ष पाने के लिए अर्थ और काम के पुरुषार्थ करना भी जरूरी है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति में धर्म और मोक्ष आध्यात्मिक सन्देश एवं अर्थ और काम की भौतिक अनिवार्यता परस्पर सम्बद्ध है। आध्यात्मिकता और भौतिकता के इस समन्वय में भारतीय संस्कृति की वह विशिष्ट अवधारणा परिलक्षित होती है, जो मनुष्य के इस लोक और परलोक को सुखी बनाने के लिए भारतीय मनीषियों ने निर्मित की थी। सुखी मानव-जीवन के लिए ऐसी चिन्ता विश्व की अन्य संस्कृतियाँ नहीं करतीं।

आज दुनिया के सामने यदि कोई संकट है तो वह केवल सभ्यताओ के संघर्ष का है । ईसाइयत हो या इस्लाम या कोई और सभ्यता , इन सबने अपने अस्तित्व के साथ ही वर्चास्वा की ऐसी जंग छेड़ी है जिसने दुनिया को अशांत कर दिया है । दुनिया की अशांति की जड़ो में जाइए तो सबकुछ साफ साफ़ दिख जाता है। भारतीयता के अलावा विश्व के हर पंथिक सभ्यता ने विश्व को अशांत ही किया है क्योकि उनका लक्ष्य कभी भी भारतीयता की तरह विश्व के कल्याण का नहीं रहा है । वे तो धरती पर खुद को स्थापित करने की जुगत में ही लगे रहे है ।उन्होंने कभी यह सोचने तक की जहमत नहीं उठाई की उनकी हरकतों से प्रकृति, मनुष्य और इस सृष्टि का कितना अहित होने वाला है । वे बिना सोचे बिचारे केवल खुद की स्थापना में मशगूल रहे । यहाँ तक की भयंकर लूटपाट , मारकाट , और युद्ध भी किये और आज भी कर रहे है । उन्होंने कभी कोई ऐसी शिक्षा प्रणाली तक नहीं विक्सित होने दिया जिसमे जगत के कल्याण की बात हो । उनकी कोशिश हमेशा केवल संकीर्ण विचारधाराए बनाने और उसी अनुरूप पीढ़िया तैयार करने की रही । इस बारे में किसी का नाम लेकर समझाने की जरूरत नहीं है क्योकि आज के इस तकनीकी और सूचना के युग में बहुत कुछ लोग देख और सुन रहे है।

जिन लोगो को अब दुनिया समझ में आ रही है उनको भारत और भारतीयता भी समझ में आने लगी है ।वे इस तथ्य को बखूबी समझाने लगे है की अगर भारतीयता , जिसे भारत की संस्कृति कहा जाता है , यदि उसको अंगीकार नहीं किया गया तो दुनिया नष्ट हो जायेगी ।संघर्षो और युद्धों से किसी का भला नहीं होने वाला ।युद्ध न तो कभी विकल्प था और न कभी हो सकता है लेकिन इसका यह भी तात्पय नहीं कि अनैतिकता और अधार्मिकता को बढ़ने दिया जय और हम तमाशबीन बने रहे । ऐसा नहीं है क्यों की हमारी संस्कृति इस बात की भी गवाह है की आज से पांच हजार साल पहले जब समाज और सत्ता अधर्म के मार्ग पर चल रहे थे , अनितिकता इतनी

बढ़ चुकी थी की राजपरिवार के एक पक्ष के लोग अपने ही परिवार के दूसरे पक्ष की बहू के शरीर से उसका वस्त्र भरी सभा में उतार रहे थे तब उस युग के महानायक को युद्ध ही विकल्प दिखा । तब उसने ऐसा युद्ध कराया की वह अनैतिक सभ्यता सदा के लिए ही ख़त्म हो गयी और नए सिरे से न्याय का शासन स्थापित हुआ।

ठीक है कि उस न्याय के शासन के बाद हमने पांच हज़ार साल से ज्यादा समय की यात्रा कर ली है । आज का मनुष्य उस समय की अवधारणाओ को जितना संचित रख सका है उअससे ज्यादा भूल चूका है , लेकिन केवल भारतीय संस्कृति के सनातन तवा है जो अभी भी हमारे पास सुरक्षित है । यह भी तथ्य है की इतनी लम्बी यात्रा के दौरान इस संस्कृति पर भी सभ्यताओ की परतो की कुछ मोती , कुछ मैली धूल की परत जैम गयी है । इस परत के कारण ही भारत की धरती पर पिछले ढाई हज़ार वर्षो में कई बार कई ऐसे महापुरुषों ने यह प्रयास किया की इस परत को साफसुथरा कर के भारत की मूल आत्मा को विक्सित होने दिया जाय लेकिन दुर्भाग्य यह हुआ की जिन जिन ने ऐसे शोधन के प्रयास किये उन्ही के अनुयायियों ने एक नए पंथ का की निर्माण कर दिया । हर बार इसे नयी नयी पूजा पद्धतियों से जोड़ने की ऐसी कोशिशे हुई की पूरी अवधारणा ही दायित्व वाले धर्म से पूजा वाले धर्म के रूप में स्थापित हो गयी । प्रचालन ऐसा बिगड़ा की भारत की मानवीय संस्कृति को भी एक पंथ या मज़हब जैसा देखा जाने लगा । हमारी सनातनता को इन अज्ञानी लोगो ने नष्ट करने की खूब कोशिश की । उसे पूजा पद्धति बनाने का प्रयास हुआ । आज भी बहुत से लोग अज्ञानतावश इसे एक पूजापद्धति मानने की गलती कर बैठते है और इसी को सत्ता लोलुप राजनीति के अलमबरदार अपना हथिया भी बनाने की कोशिश करते है ।यह वास्तव में समय का दुभाग्य ही कहा जाएगा की जिस भारतीयता को लेकर आज पूरा पश्चिम चौधियाया हुआ है , हमारे देश के भीतर उसको लेकर पंथिक बहसे हो रही है।

आज विश्व हमारी तरफ आशा भरी निगाह से देख रहा है ।अब उसकी समझ में यह तथ्य आ चूका है कि भारतीयता को अपनाए बिना कोई समाधान संभव नहीं है । आज की नयी नयी खतरनाक बीमारियों के इलाज के लिए वह भारतीय शास्त्र खंगाल रहा है । आज मन की अशांति को दूर करने के लिए वह भारत के योग और आध्यात्म को अपना रहा है ।जीवन को सुगम बनाने के लिए वह भारत के शास्त्रों का खोज खोज कर अध्ययन कर रहा है । जीवन की अवधारणा को समझाने और जीवन प्रबंधन के लिए वह गीता के श्लोको के सही अर्थ तलाश रहा है । भारतीय वांग्मय और चिंतन में वह डूबना चाहता है । अब वह भारत को सपेरो और मदारियों का देश नहीं मानता । उसे इस धरती पर केवल भारत से ही जीवन की उम्मीद मिल रही है । यह बात केवल आज की भी नहीं है , पश्चिम में अब तक जितने भी बड़े दार्शनिक , विचारक , साहित्यकार , लेखक और वैज्ञानिक हुए है , सभी ने यह माना है कि विश्व का हित केवल भारतीयता ही कर सकती है।

प्रख्यात इतिहासकार और प्राचीन भारत के इतिहास पर सबसे बड़ा शोध कर अद्भुत भारत नामक ग्रन्थ के रचयिता ए एल वाशम स्वयं स्वीकार कर चुके है कि भारत की धरती कोई सामान्य धरती नहीं है , इस धरती ने ही मनुष्य को संस्कृति दी है और आने वाले समय में विश्व को यदि कही से कुछ दिशा मेलने की उम्मीद है तो सिर्फ भारत से ही है । भारत और भारतीय सनास्कृति ही विश्व की प्रत्येक सभ्यताओं का मार्गदर्शन करा पाने में सक्षम है । आज ए एल वाशम की भविष्यवाणी के साथ ही पुरातन अतीत के प्रमाणों ने विश्व को सनातन से जोड़ना और जुड़ा हुआ प्रमाणित करना शुरू कर दिया है। सनातन संस्कृति अर्थात भारतीय संस्कृति अर्थात हिन्दू आस्था की जड़ों के प्रमाण विश्व के कोने कोने से मिल रहे हैं। यह धरती मूल रूप से सनातन संस्कृति के साथ ही गति करती रही है। इस धरती और इस पर विद्यमान सृष्टि के लिए एक मात्र जीवन साधन सनातन ही है। इसी को केंद्रित कर संस्कृति पर्व ने इस विशेष अंक का आयोजन किया है। यह अंक इसलिए भी आवश्यक लगा क्योकि विश्व के साथ साथ भारत की ही भावी और नई पीढ़ी को उसके गौरव पूर्ण अतीत से अवगत कराना बहुत आवश्यक है।

सनातन से ही विश्व की सभी संस्कृतियों की उत्पत्ति

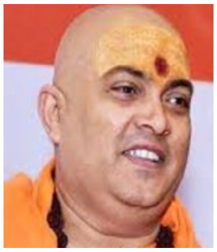

स्वामी जीतेन्द्रानंद सरस्वती

प्राचीन विश्व मे पृथ्वी पर केवल सनातन वैदिक हिन्दू संस्कृति ही विद्यमान थी। प्रत्येक मनुष्य सनातन होता था। सनातन जीवन था। सनातन चिंतन था। सनातन ही सभ्यता थी। वसुधा कुटुंब था। सृष्टि और प्रकृति के साथ संस्कृति की अवधारणा थी। क्लांतर के कथित विकास और फिर पंथों और विविध उपासना पद्धतियों ने मानव में भेद का निर्माण किया और आज विश्व अशांत और अमानवीय यंत्रणाओं से त्रस्त है। ऐसे में उस प्राचीन सनातन की खोज में अब सभी को लगने की आवश्यकता आ गयी है।

> **विद्वानों अनुसार अरब की यजीदी, सबाइन, सबा, कुरैश आदि कई जातियों का प्राचीन धर्म हिन्दू ही था। मैक्सिको में एक खुदाई के दौरान गणेश और लक्ष्मी की प्राचीन मूर्तियां पाई गईं थी। 'मैक्सिको' शब्द संस्कृत के 'मक्षिका' शब्द से आता है और मैक्सिको में ऐसे हजारों प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है। दूसरी ओर स्पेन में हजारों वर्ष पुराना एक मंदिर है जिस पर भगवान विष्णु की प्रतिमा अंकित है।**

सप्तद्वीपपरिक्रान्तं जम्बूदीपं निबोधत।
अग्नीध्रं ज्येष्ठदायादं कन्यापुत्रं महाबलम।।
प्रियव्रतोअभ्यषिञ्चतं जम्बूद्वीपेश्वरं नृपम्।।
तस्य पुत्रा बभूवुर्हि प्रजापतिसमौजसः।
ज्येष्ठो नाभिरिति ख्यातस्तस्य किम्पुरूषोअनुजः।।
नाभेर्हि सर्गं वक्ष्यामि हिमाह्व तन्निबोधत। (वायु 31-37, 38)

यह विदित है कि प्राचीन काल में भारत की सीमा अफगानिस्तान के हिन्दूकुश से लेकर अरुणाचल तक और कश्मीर से लेकर श्रीलंका तक। दूसरी ओर अरुणाचल से लेकर इंडोनेशिया, मलेशिया तक फैली थी। इस संपूर्ण क्षेत्र में 18 महाजनपदों के सम्राटों का राज था जिसके अंतर्गत सैंकड़ों जनपद और उपजनपद थे। सात द्वीपों में बंटी धरती के संपूर्ण जम्बूद्वीप पर सनातन वैदिक हिन्दू धर्म ही स्थापित था।

भारत के प्राचीन ग्रंथों में कहीं पर भी अन्यायपूर्ण युद्धों की प्रशंसा नहीं की गयी है। लोग साधारणता शान्तिपूर्ण जीवन जीने में विश्वास रखते थे। चारों ओर न्याय, वसुधैव कुटुम्बकम, सुख, शान्ति एवं ज्ञान का बोलबाला था।परन्तु आठवीं सदी में दुनियाँ की कई सभ्यताओं एवं संस्कृतियों को रौंदता, बर्बाद करता इस्लाम आखिर सोने की चिड़िया कहलाने वाले इस भूभाग पर भी आ धमका और इस पूरे क्षेत्र को धार्मिक एवं सांस्कृतिक रूप से तहस-नहस कर डाला। समस्त ज्ञान-विज्ञान एवं उस समय के भव्य मन्दिरों को नष्ट कर दिया गया। तक्षशिला, नालन्दा एवं विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालयों को नष्ट कर जला दिया गया।

लेखक अखिल भारतीय संत समिति के राष्ट्रीय महामंत्री और श्रीगंगा महासभा के राष्ट्रीय महामंत्री हैं।

यह तो अब प्रामाणिक है कि प्राचीनकाल में संपूर्ण धरती पर सनातन संस्कृति ही थी। मैक्सिको, अमेरिका, रूस, कजाकिस्तान, ताजिकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान, उजबेकिस्तान, किर्गिस्तान, तुर्की, सीरिया, इराक, स्पेन, इंडोनेशिया, चीन आदि सभी जगह पर हिन्दू धर्म से जुड़े साक्ष्य पाए गए हैं। विद्वानों अनुसार अरब की यजीदी, सबाइन, सबा, कुरैश आदि कई जातियों का प्राचीन धर्म हिन्दू ही था। मैक्सिको में एक खुदाई के दौरान गणेश और लक्ष्मी की प्राचीन मूर्तियां पाई गईं थी। 'मैक्सिको' शब्द संस्कृत के 'मक्षिका' शब्द से आता है और मैक्सिको में ऐसे हजारों प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है। दूसरी ओर स्पेन में हजारों वर्ष पुराना एक मंदिर है जिस पर भगवान विष्णु की प्रतिमा अंकित है।

इराक में भगवान श्रीराम और श्री हनुमानजी

अभी दो वर्ष पहले भारत से हजारों किलोमीटर दूर इराक में कुछ ऐसा हुआ है जिसने ये प्रमाण दिया है कि भगवान श्रीराम और उनके भक्त हनुमान जी की कथा सत्य है। हाल ही में मीडिया में आई रिपोर्टों के मुताबिक़ इराक के सिलेमानिया इलाके में मौजूद बैनुला बाईपास के पास खुदाई में भगवान राम और हनुमान जी की दुर्लभ प्रतिमाएं पाई गयी हैं । इन प्रतिमाओं के पाए जाने की पुष्टि खुद इराक सरकार ने की है। भारत द्वारा इस मामले पर मांगी

गयी जानकारी के जावब में इराक सरकार ने एक पत्र लिखकर इस बात की पुष्टि है। इतना ही नहीं इरान सरकार के पुरातत्व विभाग का दावा है कि ये प्रतिमाएं करीब 6 हजार साल पुरानी हैं। प्रतिमाओं के मिलने के बाद भारत सरकार ने भी इन प्रतिमाओं से जुड़ी और जानकारी प्राप्त करने की इच्छा जाहिर की है। इराक में भारतीय राजदूत प्रदीप सिंह राजपुरोहित की अगुआई में एक प्रतिनिधिमंडल ने उत्तर प्रदेश संस्कृति विभाग की एक शोध इकाई, अयोध्या शोध संस्थान के आग्रह पर यह कार्रवाई की है. एब्रिल वाणिज्यदूतावास में भारतीय राजनयिक चंद्रमौली कर्ण, यूनिवर्सिटी ऑफ सुलेमानिया और इराक में कुर्दिस्तानी गवर्नर ने भी इस अभियान में हिस्सा लिया। अयोध्या शोध संस्थान ने भी आधिकारिक रूप से कहा है कि बेलूला दर्रे में राम की तस्वीर के वास्तविक साक्ष्य मिले हैं, लेकिन इस प्रतिनिधिमंडल ने भारत और मेसोपोटामियाई संस्कृति में संबंध ढूंढने और विस्तृत अध्ययन करने के लिए चित्रात्मक साक्ष्य लिए गए हैं।

16 महाजनपद

महाभारत काल में अखंड भारत के मुख्यतः 16 महाजनपदों (कुरु, पंचाल, शूरसेन, वत्स, कोशल, मल्ल, काशी, अंग, मगध, वृज्जि, चेदि, मत्स्य, अश्मक, अवंति, गांधार और कंबोज) के अंतर्गत 200 से अधिक जनपद थे। दार्द, हूण, हुंजा, अम्बिस्ट आम्ब, पख्तू, कैकय, वाल्हीक बलख, अभिसार (राजौरी), कश्मीर, मद्र, यदु, तृसु, खांडव, सौवीर सौराष्ट्र, शल्य, यवन, किरात, निषाद, उशीनर, धनीप, कौशाम्बी, विदेही, अंग, प्राग्ज्योतिष (असम), घंग, मालव, कलिंग, कर्णाटक, पांडय, अनूप, विन्ध्य, मलय, द्रविड़, चोल, शिवि शिवस्थान-सीस्टान-सारा बलूच क्षेत्र, सिंध का निचला क्षेत्र दंडक महाराष्ट्र सुरभिपट्टन मैसूर, आंध्र, सिंहल, आभीर अहीर, तंवर, शिना, काक, पणि, चुलूक चालुक्य, सरोस्ट सरोटे, कक्कड़, खोखर, चिन्धा चिन्धड़, समेरा, कोकन, जांगल, शक, पुण्ड्र, ओड्र, क्षुद्रक, योधेय जोहिया, शूर, तक्षक व लोहड़ लगभग 200 जनपद से अधिक जनपदों का महाभारत में उल्लेख मिलता है। ग्रंथ बताते हैं कि म्लेच्छ और यवन को विदेशी माना जाता था। भारत में भी इनके कुछ क्षेत्र हो चले थे। हालांकि इन विदेशियों में भारत से बाहर जाकर बसे लोग ही अधिक थे। देखा जाए तो भारतीयों ने ही अरब और यूरोप के अधिकतर क्षेत्रों पर शासन करके अपने कुल, संस्कृति और धर्म को बढ़ाया था। उस काल में भारत दुनिया का सबसे आधुनिक देश था और सभी लोग यहां आकर बसने और व्यापार आदि करने के प्रति उत्सुक रहते थे। भारतीय लोगों ने भी दुनिया के कई हिस्सों में पहुंचकर वहां शासन की एक नए देश को गढ़ा है, इंडोनेशिया, सिंगापुर, मलेशिया, कंबोडिया, वियतनाम, थाईलैंड इसके बचे हुए उदाहरण है। भारत के ऐसे कई उपनिवेश थे जहां पर भारतीय धर्म और संस्कृति का प्रचलन था।

यवनाचार्य ऋषि गर्ग

ऋषि गर्ग को यवनाचार्य कहते थे। यह भी कहा जाता है कि अर्जुन की आदिवासी पत्नी उलूपी स्वयं अमेरिका की थी। धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी कंदहार और पांडु की पत्नी माद्री ईरान के राजा सेल्यूकस (शल्य) की बहिन थी। ऐसे उल्लेख मिलता है कि एक बार मुनि वेद व्यास और उनके पुत्र शुकदेव आदि जो अमेरिका मैं थे। शुक ने पिता से कोई प्रश्न पूछा। व्यास जी इस बारे मैं चूंकि पहले बता चुके थे, अत उन्होंने उत्तर न देते हुए शुक को आदेश दिया कि शुक तुम मिथिला (नेपाल) जाओ और यही प्रश्न राजा जनक से पूछना। ऐसा वर्णन मिलता है कि शुक अमेरिका से नेपाल जाना पड़ा था। कहते हैं कि वे उस काल के हवाई मार्ग से निकले उसका विवरण एक सुन्दर श्लोक में है-

'मेरोहर्रेश्च द्वे वर्षे हेमवँते ततः।
क्रमेणेव समागम्य भारतं वर्ष मासदत्।।
सदृष्टवा विविधान देशान चीन हूण निषेवितान।

अर्थात शुकदेव अमेरिका से यूरोप (हरिवर्ष, हूण, होकर चीन और फिर मिथिला पहुंचे। पुराणों हरि बंदर को कहा है। वर्ष माने देश। बंदर लाल मुंह वाले होते हैं। यूरोपवासी के मुंह लाल होते हैं। अतःहरिवर्ष को यूरोप कहा है। हूणदेश हंगरी है यह शुकदेव के हवाई जहाज का मार्ग था। अमेरिकन महाद्वीप के बोलीविया (वर्तमान में पेरू और चिली) में हिन्दुओं ने प्राचीनकाल में अपनी बस्तियां बनाईं और कृषि का भी विकास किया। यहां के प्राचीन मंदिरों के द्वार पर विरोचन, सूर्य द्वार, चन्द्र द्वार, नाग आदि सब कुछ हिन्दू धर्म समान हैं। जम्बू द्वीप के वर्ण में अमेरिका का उल्लेख भी मिलता है। पारसी, यजीदी, पैगन, सबाईन, मुशरिक, कुरैश आदि प्रचीन जाति को हिन्दू धर्म की प्राचीन शाखा माना जाता है।

भगवान गणेश , श्री राम और हनुमान की मूर्ति

अरब,ईरान,इराक,मिश्र,सीरिया,जॉर्डन सभी प्राचीन सनातन वैदिक हिन्दू ही थे। अरब में इस्लाम का कोई सबूत 1400 साल से पुराना नहीं है। इस्लाम का तो पूरा इतिहास ही 1400 साल पुराना है।अरब में ही 6000 साल पुराना हिन्दू धर्म का सबूत मौजूद है और ये खोज भी अरब के देश इराक में जाकर कोई हिन्दुओ ने नहीं बल्कि वही के मुस्लिम शोधकर्ताओं ने की है। अरब में खुदाई के दौरान गणेश जी की विशाल प्रतिमा जमीन से निकलने के बाद इराक में मिली। भगवान् राम और हनुमान की 6000 साल पुरानी आकृति, इराक भले ही आज मुस्लिम देश हो, पर ये हमेशा से मुस्लिम देश नहीं रहा है। इराक का असल

नाम 'मेसोपोटामिया' है, सऊदी अरब की तरह इराक में भी हिन्दू धर्म ही फैला हुआ था और उसका सबूत भी इराक में मिला है।

इस्लामिक इतिहासकारो को ध्यान से पढिये तो दिखेगा की इस्लाम सबसे पहले अतीत पर आकर्मण करता है।जो जमीन वह जीतता है सबसे पहले वहां की प्राचीन पुस्तको,मंदिरों,पूर्वजो की यादो को मिटाने का प्रयत्न करता रहा है।अक्सर आपने देखा और सुना होगा की कट्टरपंथी दूसरे धर्म की मूर्तियों, आकृतियों को तोड़ देते है, असल में ये ऐसा इसलिए किया जाता है ताकि दूसरे संस्कृति को मिटाया जा सके और झूठ फैलाया जा सके। साथ ही वे नबियों,पैगम्बरों के किस्से जमाने की कोशिश करने में लग जाते है उसका एक ही उद्देश्य होता है कि लोगो में बैठाया जा सके कि इस्लाम सबसे पुराना है। अब कोई सबूत ही नहीं छोड़ा जायेगा तो इस्लाम सबसे पुराना है कहने में आसानी होगी। इसी मकसद से दूसरे धर्म की मूर्तियों, आकृति को जिहादी तत्व तोड़ते है, और अक्सर उनपर मस्जिदें भी बना देते है। ध्वस्त करने का दूसरा उद्देश्य डर बैठाना होता है।जिससे हमेशा यह जताया जा सके की इस्लाम बहुत ताकतवर है उसके पैगम्बर से कोई देवता नही टकरा सकता।

इराक में भी जिहादी तत्वों ने दूसरे उपासकों के पूजा विग्रहों को तोडा। उन्हें नष्ट किया पर अब शोधकर्ताओं को इराक के सुलेमानिया में हिन्दू धर्म के प्रतिक भगवान् राम और हनुमान की आकृति मिली है।शोधकर्ताओं ने इस आकृति को 6000 साल पुरानी बताया है।यानि बनाने वालो ने इसे 6000 साल पहले इस सुलेमानिया में बनाया था, जबकि इस्लाम तो महज 1400 साल पुराना है। साफ़ होता है कि इराक में सनातन धर्म ही था।आकृति में साफ़ देखा जा सकता है की, एक पुरुष खड़े हैं जिनके हाथों में धनुष है, और उनके सामने एक वानर रूपी हनुमान हाथ जोड़े खड़े है। शोधकर्ताओं ने इसे हिन्दू धर्म के श्री राम और हनुमान के रूप में स्वीकार किया है, भारतीय ही नहीं अरबी मुस्लिम भी धर्मांतरित ही है, पर कहने को ये लोग कुछ भी कह सकते है।

संस्कृत और संस्कृति

हालांकि सनातन संस्कृति और संस्कृत भाषा सृष्टि के साथ ही अस्तित्व में आये थे लेकिन पश्चिमी शोधकर्ताओं की ही मान लिया जाय तब भी संस्कृत और कई प्राचीन भाषाओं के इतिहास के तथ्यों के अनुसार प्राचीन भारत में सनातन धर्म के इतिहास की शुरुआत ईसा से लगभग 13 हजार पूर्व हुई थी अर्थात आज से 15 हजार वर्ष पूर्व। इस पर विज्ञान ने भी शोध किया और वह भी इसे सच मानता है। जीवन का विकास भी सर्वप्रथम भारतीय प्रायद्वीप में हुआ, जो विश्व की सर्वप्रथम नदी है। यहां पूरे विश्व में डायनासोरों के सबसे प्राचीन अंडे एवं जीवाश्म प्राप्त हुए हैं। संस्कृत विश्व की सबसे प्राचीन भाषा है तथा समस्त भारतीय भाषाओं की जननी है। 'संस्कृत' का शाब्दिक अर्थ है 'परिपूर्ण भाषा'। संस्कृत से पहले दुनिया छोटी-छोटी, टूटी-फूटी बोलियों में बंटी थी जिनका कोई व्याकरण नहीं था और जिनका कोई भाषा कोष भी नहीं था। भाषा को लिपियों में लिखने का प्रचलन भारत में ही शुरू हुआ। भारत से इसे सुमेरियन, बेबीलोनीयन और यूनानी लोगों ने सीखा। ब्राह्मी और देवनागरी लिपियों से ही दुनियाभर की अन्य लिपियों का जन्म हुआ। ब्राह्मी लिपि एक प्राचीन लिपि है जिसे देवनागरी लिपि से भी प्राचीन माना जाता है। हड़प्पा संस्कृति के लोग इस लिपि का इस्तेमाल करते थे, तब संस्कृत भाषा को भी इसी लिपि में लिखा जाता था। जैन पौराणिक कथाओं में वर्णन है कि सभ्यता को मानवता तक लाने वाले पहले तीर्थंकर ऋषभदेव की एक बेटी थी जिसका नाम ब्राह्मी था। उसी ने इस लेखन की खोज की। प्राचीन दुनिया में सिंधु और सरस्वती नदी के किनारे बसी सभ्यता सबसे समृद्ध, सभ्य और बुद्धिमान थी। इसके कई प्रमाण मौजूद हैं। यह वर्तमान में अफगानिस्तान से भारत तक फैली थी।

प्राचीनकाल में जितनी विशाल नदी सिंधु थी उससे कहीं ज्यादा विशाल नदी सरस्वती थी। दुनिया का पहला धर्मग्रंथ सरस्वती नदी के किनारे बैठकर ही लिखा गया था।पुरातत्त्वविदों के अनुसार यह सभ्यता लगभग 9,000 ईसा पूर्व अस्तित्व में आई थी, 3,000 ईसापूर्व उसने स्वर्ण युग देखा और लगभग 1800 ईसा पूर्व आते-आते किसी भयानक प्राकृतिक आपदा के कारण यह लुप्त हो गया। एक ओर जहां सरस्वती नदी लुप्त हो गई वहीं दूसरी ओर इस क्षेत्र के लोगों ने पश्चिम की ओर पलायन कर दिया।

सैकड़ों हजार वर्ष पूर्व पूरी दुनिया के लोग कबीले, समुदाय, घुमंतू वनवासी आदि में रहकर जीवन-यापन करते थे। उनके पास न तो कोई स्पष्ट शासन व्यवस्था थी और न ही कोई सामाजिक व्यवस्था। परिवार, संस्कार और धर्म की समझ तो बिलकुल नहीं थी। ऐसे में केवल भारतीय हिमालयन क्षेत्र में कुछ मुट्ठीभर लोग थे, जो इस संबंध में सोचते थे। उन्होंने ही वेद को सुना और उसे मानव समाज को सुनाया। उल्लेखनीय है कि प्राचीनकाल से ही भारतीय समाज कबीले में नहीं रहा। वह एक वृहत्तर और विशेष समुदाय में ही रहा।

संपूर्ण धरती पर हिन्दू वैदिक धर्म ने ही लोगों को सभ्य बनाने के लिए अलग-अलग क्षेत्रों में धार्मिक विचारधारा की नए-नए रूप में स्थापना की थी । आज दुनियाभर की धार्मिक संस्कृति और समाज में हिन्दू धर्म की झलक देखी जा सकती है चाहे वह यहूदी धर्म हो, पारसी धर्म हो या ईसाई-इस्लाम धर्म हो। यदि आधुनिक इतिहासकारों और पश्चिमी शोध को भी देखें तो पता चलता है कि ईसा से 2300-2150 वर्ष पूर्व सुमेरिया, 2000-400 वर्ष पूर्व बेबिलोनिया, 2000-250 ईसा पूर्व ईरान,2000-150 ईसा पूर्व मिस्र (इजिप्ट), 1450-500 ईसा पूर्व असीरिया, 1450-150 ईसा पूर्व ग्रीस (यूनान), 800-500 ईसा पूर्व रोम की सभ्यताएं विद्यमान थीं।

इन सभी से भी पूर्व अर्थात आज से 5000 वर्ष पहले महाभारत का युद्ध लड़ा गया था।महाभारत से भी पहले 7300 ईसापूर्व अर्थात आज से 7300+2000=9300 साल पहले रामायण का रचनाकाल प्रमाणित हो चुका है। अब चूँकि महर्षि वाल्मीकि रचित रामायण में उससे भी पहले लिखी गई मनुस्मृति का उल्लेख आया है तो आइये अब जानते हैं रामायण से भी प्राचीन मनुस्मृति कब लिखी गयी होगी। रामायण के किष्किन्धा काण्ड में श्री राम अत्याचारी बाली को घायल कर उन्हें दंड देने के लिए मनुस्मृति के श्लोकों का उल्लेख करते हुए उसे अनुजभार्याभिमर्श का दोषी बताते हुए कहते हैं- मैं तुझे यथोचित दंड कैसे ना देता ?

श्रूयते मनुना गीतौ श्लोकौ चारित्र वत्सलौ।।
गृहीतौ धर्म कुशलैः तथा तत् चरितम् मयाअ।।

वाल्मीकि ४-१८-३०

राजभिः धृत दण्डाः च कृत्वा पापानि मानवाः।
निर्मलाः स्वर्गम् आयान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा।।

वाल्मीकि ४-१८-३१

शसनात् वा अपि मोक्षात् वा स्तेनः पापात् प्रमुच्यते।
राजा तु अशासन् पापस्य तद् आप्नोति किल्बिषम्।

वाल्मीकि ४-१८-३२

मनुस्मृति

उपरोक्त श्लोक ३० में मनु का नाम आया है और श्लोक ३१ , ३२ भी मनुस्मृति के ही हैं एवं उपरोक्त सभी श्लोक मनु अध्याय ८ के है जिनकी संख्या कुल्लूकभट्ट कि टीकावली में ३१८ व ३१९ है। अतः यह सिद्ध हुआ कि श्लोकबद्ध मनुस्मृति जो महर्षि वाल्मीकि रचित रामायण में अनेक स्थान पर आयी है वह मनुस्मृति रामायणकाल (9300 साल) के भी पहले विद्यमान थी ।

अब विदेशी प्रमाणों के आधार पर ही जान लेते हैं कि रामायण से भी पहले की मनुस्मृति कितनी प्राचीन है।सन १९३२ में जापान ने बम विस्फोट द्वारा चीन की ऐतिहासिक दीवार को तोड़ा तो उसमे से एक लोहे का ट्रंक मिला जिसमे चीनी भाषा की प्राचीन पांडुलिपियां भरी थी । बताया जा रहा है कि वे हस्तलेख Sir Augustus Fritz George के हाथ लग गयीं। वह उन्हें लंदन ले गये और ब्रिटिश म्युजियम में रख दिया । उन हस्तलेखों को Prof. Anthony Graeme ने चीनी विद्वानो से पढ़वाया। चीनी भाषा के उन हस्तलेखों में से एक में लिखा है -

'मनु का धर्मशास्त्र भारत में सर्वाधिक मान्य है जो वैदिकसंस्कृत में लिखा है और दस हजार वर्ष से अधिक पुराना है' तथा इसमें मनु के श्लोकों कि संख्या 630 भी बताई गई है।

यही विवरण मोटवानी कि पुस्तक 'मनु धर्मशास्त्र :ए सोशियोलॉजिकल एंड हिस्टोरिकल स्टडीज' पेज २३२ पर भी दिया है ।इसके अतिरिक्त R.P. Pathak कि Education In The Emerging India में भी पेज १४८ पर है।अब देखें चीन की दीवार के बनने का समय लगभग 220–206 BC है अर्थात लिखने वाले ने कम से कम 220BC से पूर्व ही मनु के बारे में अपने हस्तलेख में लिखा 220+10000 =10220 ईसा पूर्व यानी आज से कम से कम 12,220 वर्ष पूर्व तक भारत में मनुस्मृति पढ़ने के लिए उपलब्ध थी ।

वेद

मनुस्मृति में सैकड़ों स्थानों पर वेदों का उल्लेख आया है। अर्थात वेद मनुस्मृति से भी पहले लिखे गये। अब हिन्दू धर्म के आधार वेदों की प्राचीनता जानते हैं। वेदों का रचनाकाल इतना प्राचीन है कि इसके बारे में सही-सही किसी को ज्ञात नहीं है। सनातन मान्यता के अनुसार वेद सृष्टि के साथ ही अस्तित्व में आये। पाश्चात्य विद्वान वेदों के सबसे प्राचीन मिले पांडुलिपियों के हिसाब से वेदों के रचनाकाल के बारे में अनुमान लगाते हैं। जो अत्यंत हास्यास्पद है। क्योंकि वेद लिखे जाने से पहले हजारों सालों तक पीढ़ी दर पीढ़ी सुनाए जाते थे। इसीलिए वेदों को 'श्रुति' भी कहा जाता है।

उस काल में भोजपत्रों पर लिखा जाता था अतः यदि उस कालखण्ड में वेदों को हस्तलिखित भी किया गया होगा तब भी आज हजारों साल बाद उन भोजपत्रों का मिलना असम्भव है। फिर भी वेदों पर सबसे अधिक शोध करने वाले स्वामी दयानंद जी ने अपने ग्रंथों में ईश्वर द्वारा वेदों की उत्पत्ति का विस्तार से वर्णन किया हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के पुरुष सूक्त (ऋक १०.९०, यजु ३१ , अथर्व १९.६) में सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है कि परम पुरुष परमात्मा ने भूमि उत्पन्न की, चंद्रमा और सूर्य उत्पन्न किये, भूमि पर भांति भांति के अन्न उत्पन्न किये,पशु पक्षी आदि उत्पन्न किये। उन्ही अनंत शक्तिशाली परम पुरुष ने मनुष्यों को उत्पन्न किया और उनके कल्याण के लिए वेदों का उपदेश दिया।

उन्होंने शतपथ ब्राह्मण से एक उद्धरण दिया और बताया-

'अग्नेर्वा ऋग्वेदो जायते वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः।।

प्रथम सृष्टि की आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा इन तीनों ऋषियों की आत्मा में एक एक वेद का प्रकाश किया।' (सत्यार्थप्रकाश, सप्तमसमुल्लास, पृष्ठ 135)

इसलिए वेदों की उत्पत्ति का काल मनुष्य जाति की उत्पत्ति के साथ ही माना जाता है। स्वामी दयानंद की इस मान्यता का समर्थन ऋषि मनु और ऋषि वेदव्यास भी करते हैं। परमात्मा ने सृष्टी के आरंभ में वेदों के शब्दों से ही सबवस्तुओं और प्राणियों के नाम और कर्म तथा लौकिक व्यवस्थाओं की रचना की हैं. (मनुस्मृति १.२१)

स्वयंभू परमात्मा ने सृष्टि के आरंभ में वेद रूप नित्य दिव्यवाणी का प्रकाश किया जिससे मनुष्यों के सब व्यवहार सिद्ध होते हैं (वेद व्यास,महाभारत शांति पर्व २३२/२४)

कुल मिलाकर वेदों, सनातन धर्म एवं सनातनी परम्परा की शुरूआत कब हुई, यह अभी भी एक शोध का विषय है। इसका मतलब कि हजारों वर्ष ईसा पूर्व भारत में एक पूर्ण विकसित सभ्यता थी। और यहाँ के लोग पढ़ना-लिखना भी जानते थे। इसके बाद भारतीय संस्कृति का प्रकाश धीरे-धीरे पूरे विश्व में फैलने लगा। तब भारत का 'धर्म' दुनियाभर में अलग-अलग नामों से प्रचलित था। अरब और अफ्रीका में जहां सामी, सबाईन, मुशरिक, यजीदी, अश्शूर, तुर्क, हित्ती, कुर्द, पैगन आदि इस धर्म के मानने वाले समाज थे तो रोम, रूस, चीन व यूनान के प्राचीन समाज के लोग सभी किसी न किसी रूप में हिन्दू धर्म का पालन करते थे। फिर ईसाई और बाद में दुनियाँ की कई सभ्यताओं एवं संस्कृतियों को नष्ट करने वाले धर्म इस्लाम ने इन्हें विलुप्त सा कर दिया।

मैक्सिको में ऐसे हजारों प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है। जीसस क्राइस्ट्स से बहुत पहले वहां पर हिन्दू धर्म प्रचलित था। अफ्रीका में 6,000 वर्ष पुराना एक शिव मंदिर पाया गया और चीन, इंडोनेशिया, मलेशिया, लाओस, जापान में हजारों वर्ष पुरानी विष्णु, राम और हनुमान की प्रतिमाएं मिलना इस बात का प्रमाण है कि सनातन वैदिक हिन्दू धर्म संपूर्ण धरती पर था।

उदाहरण के तौर पर एरिक वॉन अपनी बेस्ट सेलर पुस्तक 'चैरियट्स ऑफ गॉड्स' में लिखते हैं -

विश्व की सबसे प्राचीन सुमेरियन सभ्यता(2300 B.C.) से भी प्राचीन लगभग 5,000 वर्ष पुराने महाभारत के तत्कालीन कालखंड में उन्नत सामाजिक व्यवस्था, उन्नत शासन प्रणाली, उन्नत भाषा आदि का विस्तारित विवरण एवं उक्त कालखंड के योद्धाओं द्वारा आज के अत्याधुनिक अस्त्र-शस्त्रों के समान ही

अनेक शस्त्रों का प्रयोग केवल कल्पना मात्र नहीं हो सकता। वे किसी ऐसे अस्त्र के बारे में कैसे जानते थे जिसे चलाने से 12 साल तक उस धरती पर सूखा पड़ जाता, ऐसा कोई अस्त्र जो इतना शक्तिशाली हो कि वह माताओं के गर्भ में पलने वाले शिशु को भी मार सके? इसका अर्थ है कि ऐसा कुछ न कुछ तो था जिसका ज्ञान आगे नहीं बढ़ाया गया अथवा लिपिबद्ध नहीं हुआ और गुम हो गया।

प्राचीन संस्कृति में मनोरंजन

प्राचीन भारत बहुत ही समृद्ध और सभ्य देश था, जहां हर तरह के अस्त्र शस्त्र प्रयोग किये जाते थे, तो वहीं मानव के मनोरंजन के भरपूर साधन भी थे। ऐसा कोई खेल या मनोरंजन का साधन नहीं है जिसका आविष्कार भारत में न हुआ हो। आज शेष विश्व में जितनी भी संस्कृतियाँ, सामाजिक व्यवस्थाएँ एवं धार्मिक मान्यताएँ प्रचलित हैं; प्राचीन भारतीय ग्रंथों का गहन अध्ययन करने से ये प्रमाणित हो जाता है कि ये सभी भारत में प्रचलित हिन्दू धर्म एवं संस्कृति से पूरी तरह प्रभावित हैं। कई विश्व विख्यात विद्वानों एवं वैज्ञानिक शोधों ने ये प्रमाणित भी किया है।

पानी के जहाज

संस्कृत और अन्य भाषाओं के ग्रंथों में इस बात के कई प्रमाण मिलते हैं कि भारतीय लोग समुद्र में जहाज द्वारा अरब और अन्य देशों की यात्रा करते थे और सनातन धर्म एवं सभ्यता का परिचय कराते थे। वहीं किसी भी ग्रंथ एवं उल्लेखों में अपने धर्म एवं सभ्यता को प्रचारित करने में किसी भी देश या मानव समूहों में किसी भी प्रकार की जबरदस्ती एवं बलप्रयोग का उल्लेख नहीं मिलता। प्राचीन भारतायों का लम्बी यात्राएं कर विश्व के विभिन्न स्थानों पर जाना केवलमात्र शेष विश्व को सभ्यता से परिचय कराना था।

वायुयान

विमानों से यात्रा करने की कई कहानियां भारतीय ग्रंथों में भरी पड़ी हैं जो इतनी अधिक बार उल्लेखित हुई हैं कि इसे असत्य नहीं माना जा सकता। यहीं नहीं, कई ऐसे ऋषि और मुनि भी थे, जो योगबल से अंतरिक्ष में दूसरे ग्रहों पर जाकर पुनः धरती पर लौट आते थे।वर्तमान समय में भारत की इस प्राचीन तकनीक और वैभव का खुलासा कोलकाता संस्कृत कॉलेज के संस्कृत प्रोफेसर दिलीप कुमार कांजीलाल ने 1979 में एंशियंट एस्ट्रोनट सोसाइटी (Ancient Astronaut Society) की म्युनिख (जर्मनी) में संपन्न छठी कांग्रेस के दौरान अपने एक शोध पत्र से किया। जिससे विश्व आश्चर्यचकित हो गया था। उन्होंने उड़ सकने वाले प्राचीन भारतीय विमानों के बारे में एक उद्बोधन दिया और पर्चा प्रस्तुत किया।

संगीत और वाद्य यंत्र

संगीत और वाद्ययंत्रों का अविष्कार भारत में ही हुआ है। अत्याधुनिक पाश्चात्य वाद्ययंत्र इन्हीं के रूपान्तर हैं। हिन्दू धर्म का नृत्य, कला, योग और संगीत से गहरा नाता रहा है। हिन्दू धर्म मानता है कि ध्वनि और शुद्ध प्रकाश से ही ब्रह्मांड की रचना हुई है। आत्मा इस जगत का कारण है। चारों वेद, स्मृति, पुराण और गीता आदि धार्मिक ग्रंथों में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को साधने के हजारों हजार उपाय बताए गए हैं। उन उपायों में से एक है संगीत। संगीत की कोई भाषा नहीं होती। संगीत आत्मा के सबसे ज्यादा नजदीक माना जाता था।

आज भी विग्रहों में हिन्दुओं के लगभग सभी देवी और देवताओं केपास अपना एक अलग वाद्य यंत्र है। संगीत का सर्वप्रथम ग्रंथ चार वेदों में से एक सामवेद ही है। इसी के आधार पर भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र लिखा और बाद में संगीत रत्नाकर, अभिनव राग मंजरी लिखा गया। दुनियाभर के संगीत के ग्रंथ सामवेद से प्रेरित हैं।

प्राचीन भारतीय नृत्य शैली से ही दुनियाभर की नृत्य शैलियां विकसित हुई है। भारतीय नृत्य मनोरंजन के लिए नहीं बना था। भारतीय नृत्य ध्यान की एक विधि के समान कार्य करता है। मूलतः यह प्राचीन हिन्दुओं द्वारा निर्मित एक योग क्रिया है।

सामवेद में संगीत के साथ साथ नृत्य का भी उल्लेख मिलता है। हड़प्पा सभ्यता में नृत्य करती हुई लड़की की मूर्ति पाई गई है। भरत मुनि का नाट्य शास्त्र नृत्यकला का सबसे प्रथम व प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। इसको पंचवेद भी कहा जाता है। यही नहीं सृष्टि के आरम्भिक हिन्दू ग्रंथों और पुराणों में भी शिव और पार्वती के नृत्य का वर्णन मिलता है।

ध्वनि की खोज

भारतीय ऋषियों ने ऐसी सैकड़ों ध्वनियों को खोजा, जो प्रकृति में पहले से ही विद्यमान है। उन ध्वनियों के आधार पर ही उन्होंने मंत्रों की रचना की, संस्कृत भाषा की रचना की और ध्यान एवं स्वास्थ्य में लाभदायक ध्यान ध्वनियों की रचना की। इसके अलावा उन्होंने ध्वनि विज्ञान को अच्छे से समझकर इसके माध्यम से शास्त्रों की रचना की और प्रकृति को संचालित करने वाली ध्वनियों की खोज भी की। आज का विज्ञान अभी भी संगीत और ध्वनियों के महत्व और प्रभाव की खोज में लगा हुआ है, लेकिन ऋषि-मुनियों से अच्छा कोई भी संगीत के रहस्य और

उसके विज्ञान को नहीं जान पाया।

ज्ञान, कला, संस्कृति, शिक्षा

भारत में प्राचीनकाल से ही ज्ञान को अत्यधिक महत्व दिया जाता था। कला, विज्ञान, गणित और ऐसे अनगिनत क्षेत्र हैं जिनमें भारतीय योगदान अनुपम है। आधुनिक युग के ऐसे बहुत से आविष्कार हैं, जो प्राचीन भारतीय शोधों के निष्कर्षों पर आधारित हैं प्राचीन भारतीयों ने एक ओर जहां पिरामिडनुमा मंदिर बनाए तो दूसरी ओर स्तूपनुमा मंदिर बनाकर दुनिया को चमत्कृत कर दिया। आज दुनियाभर के धर्म के प्रार्थना स्थल इसी शैली में बनते हैं। तब हिन्दू मंदिरों को देखना सबसे अद्भुत माना जाता था। मौर्य, गुप्त और विजयनगरम साम्राज्य के दौरान बने हिन्दू मंदिरों की स्थापत्य कला को देखकर हर कोई दांतों तले अंगुली दबाए बिना नहीं रह पाता। अजंता-एलोरा की गुफाएं हों या वहां का विष्णु मंदिर। कोणार्क का सूर्य मंदिर हो या जगन्नाथ मंदिर या कंबोडिया के अंकोरवाट का मंदिर हो या थाईलैंड के मंदिर, उक्त मंदिरों से पता चलता है कि प्राचीन भारत में किस तरह के मंदिर बनते होंगे। समुद्र में डूबी कृष्ण की द्वारिका के अवशेषों की जांच से पता चलता है कि आज से 5,000 वर्ष पहले जब पूरी दुनियाँ जंगलों में नंगी घूमती थी तब भी हिन्दुओं के मंदिर और महल अत्यंत भव्य होते थे और हिन्दू सभ्यता, संस्कृति एवं ज्ञान से परिपूर्ण । उल्लेखों के अनुसार उनमें प्राचीन भारतीय ज्ञान-विज्ञान, कला, संस्कृति, दर्शन, खगोलविज्ञान आदि से सम्बन्धित इतनी अधिक संख्या में पुस्तकें थीं जो कई महीनों तक जलती रहीं और विश्व ने मानव-सभ्यता की इस लिपिबद्ध अनमोल धरोहर को सदा के लिए खो दिया। इसके साथ ही दुनियाँ की सबसे प्राचीन, सभ्य एवं समृद्ध हिन्दू सभ्यता का पराभव काल आरम्भ हुआ जो कालांतर में मुगल लुटेरों से लेकर अंग्रेजों के शासनकाल तक चलता रहा।

आज देश के विद्यालयों में पढ़ने वाले बच्चे वामपंथी इतिहासकारों के द्वारा लिखा गया भारत का नकली इतिहास पढ़ते हैं जिसमें उन्हें बताया जाता है मानों केवल मुगलों के शासन में ही भारत का इतिहास निहित है। उसके पहले का स्वर्णिम काल केवल मनगढ़ंत बातें हैं। आज मैकाले की शिक्षा पद्धति के कारण छात्र अपने ही अतीत से दूर हो गये हैं, एवं अपनी ही संस्कृति का उपहास करते हैं। परन्तु अब झूठ से पर्दा उठने लगा है। अब आशा बँधने लगी है कि भारत अपने खोये गौरव को पुनः प्राप्त करेगा। यह प्रामाणिक है कि चीन, रूस, अमेरिका, इंडोनेशिया,कंबोडिया, वियतनाम, मलेशिया, सिंगापुर, थाइलैंड,फिलीपींस और जर्मनी से लेकर धरती के कोने कोने में भगवान शिव, भगवान गणेश,भगवान राम, श्री हनुमान जी समेत अनेक सनातन वैदिक हिन्दू देवी देवताओं के प्राचीन विग्रह मिल रहे हैं। स्वाभाविक है कि यह प्राचीनता का वैभव ही विश्व मे शांति का वाहक बनेगा।

।। नारायण।।

शब्द संसार की गंगोत्री भारतीय ज्ञान परंपरा

प्रो. राकेश कुमार उपाध्याय

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे, सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने।
आपदामपहर्तारम् दातारम् सर्वसंपदाम् लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्।।

विश्व माने या ना माने लेकिन यूरोप और अमेरिका में जो डिवाइन या डिवीनिटी शब्द है वह स्वयं में देवी के पराशक्ति से उत्पन्न वैश्विक स्वरूप और उसकी प्राचीन मान्यता के सन्दर्भ को स्पष्ट कर देता है। अंग्रेजी का मैटर शब्द भी संस्कृत परंपरा से जुड़ा है। मैटर matter या मैटिरियल material शब्द संस्कृत के मातृ, माते, मातेर से ही निकला है। ऑक्सफोर्ड की एटिमोलोजिकल डिक्शनरी ने इसे मदर अर्थात मातृ से ही वयुत्पन्न मानते हुए भारत की सनातन संस्कृति की इस मान्यता को स्वीकृति प्रदान की है कि पदार्थ का कण-कण उसी माता का ही स्वरूप है। इसीलिए material शब्द से तादात्म्य रखने वाले सभी शब्द मातृशक्ति सूचक संज्ञाओं और विशेषणों से जुड़े दिखाई पड़ते है। maternity, maternal, matrimony, matron आदि अनेक शब्द हैं।

पहले डिवाइन या डिवीनिटी शब्द का विश्लेषण देखिए। प्राचीन फ्रेंच में divine को सीधे तौर पर devin देवीन कहकर पुकारा गया है। डिवाइन शब्द मौलिक रूप से अंग्रेजी और अन्य यूरोपीय भाषाओं में लैटिन के divin दाइविन या divinus दाइविनस से लिया गया है। इसके मायने हैं कि भगवान का जो रूप है, ईश्वरीय शक्ति के रूप से इसे जोड़कर देखा गया है। अंग्रेजी में इसे राजनीतिक अर्थों में भी इस्तेमाल किया गया कि वह शक्ति जो राजा से जुड़ी है। और सबसे अहम बात यह कि इसे भगवान की प्रकृति माना गया है जो भगवान की तरह है, उनसे प्रेरित है, स्वर्गिक है heavenly and devoted to god, partaking of the nature of god or godlike religious, sacred, divine which is right of the kings. Related with theologian, supernatural. एक प्रकार की सुपर पावर। सुपर शब्द अंग्रेजी में लैटिन से ही आया है। SUPRA के साथ सुपर का जन्म होता है। हमने देवी को पराशक्ति के रूप में देखा है, लैटिन ने भी डिवाइन को सुप्रा या सुपर माना है। जो जगत से परे है, संसार से ऊपर है, जो सर्वोच्च है, सुप्रीम जिसे कहा गया है, भारतीय परंपरा में जो परारूप है, पराशक्ति ही जब इस संसार को प्रकट करती है, तो वह शक्ति सर्वोच्च कही जाती है। अंग्रेजी का सुपर या लैटिन का सुप्रा उसी का संकेतक है। सेमेटिक परंपरा माता के दिव्य रूप को शब्दों में संकल्पित कर रही है क्योंकि वह डिविनिटी या डिवाइन को पावर से ही जोड़ती है लेकिन वह उसे देवी रूप में देख पाने में जाने क्यों असमर्थ है, हालांकि शब्द रूप में वह इसे भगवान की प्रकृति तो बता ही रही है।

"भारतीय परंपरा में प्रकृति की जितनी गहरी और गंभीर व्याख्या की गई है, वह संपूर्ण विश्व की दार्शनिक परंपरा में दुर्लभ है। हालांकि वैश्विक परंपरा के शब्द व्युत्पत्ति और क्रम विन्यास में भारतीय दर्शन की झलक निश्चित रूप से देखने को मिलती है किन्तु जगत के मौलिक सत्य को जिस साहस और संपूर्णता के साथ सनातन दर्शन घोषित करता है उसको इस खुले रूप में स्वीकार करने का साहस सेमेटिक परंपराओं में हमें खोजे नहीं मिलता।"

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण तेरहवें अध्याय में प्रकृति और पुरुष के संबंध को व्याख्यायित करते हैं और कहते हैं कि प्रकृति और पुरुष दोनों को अनादि ही

लेखक-डॉ. राकेश कुमार उपाध्याय, भारत अध्ययन केंद्र, का.हि.विवि., वाराणसी

माननना चाहिए। 19.13 श्रीमद्भगवद्गीता

प्रकृतिं पुरुषं चैव विदध्यनादी उभवापि।

भारत की परंपरा में कश्मीर से उपजे शैव दर्शन ने इसे ही शिव और शक्ति के रूप में परिभाषित किया है। इसमें माना गया है कि परमशिव के साथ अभिन्न रहने वाली वह जो अनादि शुद्ध शक्ति है और इस शक्ति की इच्छा ही सम्पूर्ण चर-अचर जगत को उत्पन्न करने वाला बीज है।

इच्छा सैव स्वच्छा संततसमवायिनी सती शक्तिः।

सचराचरस्य जगतो बीजं निखिलस्य निजनिलीनस्य।

श्लोक क्रमांक 2.षट्त्रिंशतत्वसंदोह

भारतीय परंपरा में प्रकृति की जितनी गहरी और गंभीर व्याख्या की गई है, वह संपूर्ण विश्व की दार्शनिक परंपरा में दुर्लभ है। हालांकि वैश्विक परंपरा के शब्द व्युत्पत्ति और क्रम विन्यास में भारतीय दर्शन की झलक निश्चित रूप से देखने को मिलती है किन्तु जगत के मौलिक सत्य को जिस साहस और संपूर्णता के साथ सनातन दर्शन घोषित करता है उसको इस खुले रूप में स्वीकार करने का साहस सेमेटिक परंपराओं में हमें खोजे नहीं मिलता। हालांकि इसके बगैर उनकी यात्रा भी अधूरी ही है क्योंकि जबतक इस मौलिक ज्ञान को स्वीकार नहीं करते तबतक उन्हें संसार के मौलिक सत्य का दिग्दर्शन भी नहीं हो सकता। यही कारण है कि सत्य का मार्ग देखना या पहचानना तो दूर, सेमेटिक परंपरा भटकाव की अपनी भूलभूलैया में मद-मोह से आच्छादित अज्ञान को ही सत्य मानकर संपूर्ण मानवता को भटकाए और भ्रमजाल में फंसाए रखने के सिवाय कोई दूसरा योगदान कर ही नहीं पा रही है। सेमेटिक मत-मजहबों ने अब तक मानवता को सिवाय अपने अज्ञान जनित चिन्तन में बांटने और मत-मजहब प्रेरित हिंसा के दिया ही क्या है? विश्व में निरंतर बढ़ रहे हिंसक चिन्तन को देखकर सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है कि इसके पीछे के मूल कारण क्या हैं। एक बार कारण का निदान सही तरीके से हो जाए तो फिर इलाज का रास्ता मिलने में भी देर नहीं लगती है।

डिवाइन और डिवीनिटी की खोज के लिए मानवता की यात्रा तब तक अधूरी है जबतक कि वह मौलिक रूप से भारतीय ज्ञान परंपरा का प्रसाद न प्राप्त कर ले। अन्यथा तो हर शब्द केवल भटकाव की जड़ों को जमाने और इसे बढ़ाने के उपक्रम का साझीदार होता चला जाएगा। अंग्रेजी के शब्द THE और दूसरे शब्द THEO को ही ले लीजिए। THE द या दी के रूप में पढ़ा जाता है, इसे Definite article माना जाता है यानी जो पद ध्रुव है, निश्चित है। इसमें अनिश्चय का स्थान नहीं। indefinite Article में a और an कहे जाते हैं। ये अनिश्चित हैं।

इस निश्चितता के कारण ही the विशिष्ट बोध को जन्म देता है। इसी में से the के बाद ही THEO शब्द थियो के रूप में उच्चरित होता है। इसी THEO शब्द से थियोलॉजी शब्द पाश्चात्य परंपरा में पैदा हुआ है। सवाल है कि जब THE का उच्चारण दी या द है तो THEO में यह थ या थि क्यों हो जाता है। अगर इसे THE के सही उच्चारण द के अनुसार पढ़े तो उच्चारण होता है दिओ। इस प्रकार थियोलॉजी को पढ़ा जाएगा दिओलॉजी। अर्थात वह ज्ञान जो देवों से जुड़ा है, लैटिन ने इस थियोलॉजी को साफ तौर पर देवलोगस यानी देवलोग या देवलोक का बताया है। इसी लैटिन से यह शब्द अंग्रेजी में आया।

अब THE शब्द कहां से आया, इसकी खोज भी आवश्यक है। आपको यह जानकर आश्चर्य की अनुभूति होगी कि ओल्ड इंग्लिश में THE को शिव के जैसे एक शब्द से उत्पन्न माना गया है। ऑक्सफोर्ड की मूल प्राचीन डिक्शनरी के अनुसार, THE की उत्पत्ति ओल्ड इंग्लिश के SEO, SIO से हुई है। अवेस्त ने इसे तत से उत्पन्न माना है। गोथिक में सा, सो है। ग्रीक में हो, हे, हा रूप में है। जर्मन में दे, दिव, दाई, दास है। डच में दे और दात है। ओल्ड फ्रिसियन में दी, दिव, देत कहा गया है। ओल्ड सेक्सोन में से, पे, पी, पिउ, पत कहा गया है। ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी द या दी शब्द को संस्कृत के तत शब्द के समान मानती है। The से ही मिलता जुलता एक शब्द है thee। इसका मतलब है तेरा, तुम्हारा, तुझको। ये लैटिन के ते शब्द से निकला बताया जाता है। अगर आप थोड़ी संस्कृत जानते हैं तो सः, तौ, ते के शब्द रूप के बारे में भी शान्त मन से विचार अवश्य करिएगा।

Theo शब्द ग्रीक के देओस शब्द से निकला है जिसके मायने हैं देवता या देवता से जुड़ा हुआ। यही अर्थ लैटिन में भी मिलता है। theologal, theologue, theologian, theological, theologician आदि अनेक शब्द हैं जो अंग्रेजी में ग्रीक और लैटिन परंपरा से प्राप्त हुए हैं। लैटिन में इसे theologus, ग्रीक में theologos कहा गया है। अब जरा संस्कृत के शब्द देव को इन शब्दों में रखकर देखिए। the का उच्चारण तो द या दी ही सही है। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि जो संस्कृत में देव है, वह ग्रीक में देओस या थेओस है, लैटिन में स्पष्ट रूप से देउस, दैवस और देवलोग है। यूरोप की भाषा परंपरा में इसे दिव या सिव, तिव, तिवर भी कहा गया है। इस प्रकार भाषाविद इसे भारोपीय भाषा परिवार से जोड़कर देखते हैं।

ग्रीक परंपरा में अनेक देवी-देवताओं का स्वरूप देखने और पढ़ने को मिलता है। संस्कृत में ओम द्यौ शान्ति, अंतरिक्ष शान्ति से शुरु होने वाला जो शान्ति मंत्र है, इसमें जो द्यौ शब्द है वह आकाश देवता को संबोधित करता है। ग्रीक में ज्योउस को

आकाश देवता कहा गया है। संस्कृत में देव और दिव द्यु रूप में माने गए हैं। यही द्यू ग्रीक में जेउस है और लैटिन में जु या ज्यू। संस्कृत में जो द्यौपितर शब्द है अर्थात आकाश-पिता। लैटिन में शब्द है ज्यूपितर। यही ज्यूपिटर ग्रह देवता के रूप में पाश्चात्य परंपरा में शामिल होता है।

इस प्रकार भारतीय दार्शनिक परंपरा पश्चिम के शब्द संसार में रची-बसी दिखाई देती है तो इसका मतलब केवल इतना नहीं है कि ये किसी एक भारोपीय परिवार की होने के कारण शाब्दिक साम्यता रखती हैं। इसमें नई बात यह है कि दार्शनिक और आध्यात्मिक परंपरा का असर भी पश्चिम पर भारत ने बहुत ही गहरे डाला था। आज एक एक शब्द को समझने और नए सिरे से जानने की आवश्यकता है। केवल मात्र भारतीय शब्द भंडार से उसकी साम्यता को ही नहीं देखना और समझना है। हमें यह भी देखना है कि शब्द के पीछे का अर्थ कहां तक पश्चिम की परंपरा में गया है। पश्चिम आज अपने जिन जिन शब्दों को बोलता है, वह उन शब्दों को देखता-समझता किस रूप में है और उनका प्राचीन मौलिक सृजन आखिर हुआ क्यों था? द, दी, दाउ, दाइ, दिस, दैट, दिअर के साथ जो शब्दों की दैवीय भावना है, डिवीनिटी, डिवाइऩ स्वरूप है, उसे भी जानना और समझना आवश्यक है। और यह दैवीय भाव भारत ने यूरोप के शब्द संसार में ही नहीं भरा था, सोवियत रूस का शब्द संसार तो भारत के बगैर अपनी पहचान को ही तरसने लगे। विश्वास न हो तो केवल इन कुछ चंद पंक्तियों को ध्यान से पढ़ लीजिए। शेष वार्ता अगले अंक में होगी। पहले संस्कृत और रशियन भाषा में गिनती देखिए-

संस्कृत में **एकम्** रशियन में **एजम,**

संस्कृत के **द्वो, द्वे** यानी **दो,** रशियन में **द्वा**

संस्कृत के **त्रयः**, **तिस्र, त्रीणि,** रशियन में **त्री**

संस्कृत के **चत्वारः** या **चतस्र,** रशियन में **चितिर**

संस्कृत में **पंच** के लिए, रशियन में **प्याच**

संस्कृत में **षष्ट**, रशियन में **षेष्ट**

सप्तम के लिए रशियन में **सेमा** या **सेपमा**

अष्टम के लिए **वो-सेमा**

नवम के लिए **द्येवेम** या **द्वे-यत** और

संख्या **दस** या **दशम** के लिए **देशत** या **देश-यत**

(दशम संस्कृत में दस है, रशियन में देशत या देस्यम दश है)। संस्कृत के शतम और शत यानी सौ के लिए स्तो या सतो या सतोम।

कुछ और शब्दों को देखिए। रशियन भाषा में संस्कृत के जीव और जीवन को ठीक इसी तरह जीवोय, जीवेत, जीवोत कहा जाता है।

रशियन भाषा में पुराने और पकी फसल के दाने को या पुरानी चीज के लिए शब्द है जिरनो...संस्कृत में जीर्ण शब्द है पुरानी चीजों के लिए।

ज्ञाति शब्द का मतलब संस्कृत में है एक कुटुम्ब से जुड़े हुए, इसी से जाति की उत्पत्ति हुई है। रशियन में भी रिश्तेदार को ज्यात शब्द से जोड़ते है, खासकर जो दामाद है उसे ज्यात या जिआत कहते हैं।

तपन संस्कृत में गर्मी या उष्णता का संकेत देता है, रशियन भाषा में तपीत शब्द उष्णता के लिए है।

तम और तमस का मतलब संस्कृत में होता है अंधेरा, रशियन भाषा में तमा और तेमोस अंधेरे के लिए प्रयुक्त होता है।

संस्कृत में संवाद में तर्क को प्रमुख स्थान दिया गया है, रशियन में बातचीत में समझदारी के साथ बातचीत को तोल्क tolk कहा गया है, अंग्रेजी का शब्द टॉक इसी से जुड़ा है। ऐसे शब्द हजारों की तादाद में हैं। बात केवल शब्दों की ही नहीं है। अंग्रेजी व्याकरण के अन्तर्गत क्रिया रूपों पर भी संस्कृत व्याकरण का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

संस्कृत के महत्वपूर्ण धातु रूप 'भू', 'भव' और 'अस्' का अर्थ है होना। उसी प्रकार से जैसे अंग्रेजी के BE और being शब्द से होने का अर्थ निकलता है। संस्कृत के 'भव' और 'अस्' धातु ने अंग्रेजी के VERB या क्रिया रूप को मौलिक आधार प्रदान किया, यह सुनकर संभवतः आप हैरत में पड़ जाएंगे। जिन्हें संस्कृत का ज्ञान नहीं है, उन्हें तो बिल्कुल ही अविश्वसनीय लगेगा किन्तु यह सत्य है कि भव और अस धातु का अंग्रेजी के be, am, is, are, was और were से संपूर्ण रिश्ता है। किस आधार पर यह संबंध है, है भी कि या नहीं है? तो इसका उत्तर ऑक्सफोर्ड शब्दकोश से प्राथमिक रूप से मिलता है।

ऑक्सफोर्ड के पुराने प्रामाणिक अंग्रेजी शब्दकोश में BE की उत्पत्ति संस्कृत के "भव" धातु से ही मानी गई है हालांकि इंडो-यूरोपियन लिखकर कुछ नकार का भाव भी इसमें दिखाई देता है। लिखा है कि-the Indo-European verb with stem base of Sanskrit 'bhu'.। इसमें लिखा है कि ग्रीक में इसे phu तो लैटिन में fu, ओल्ड इंग्लिश में beo और beon और जर्मन में बौ कहा गया है। संस्कृत में भव और जर्मन में बौ ! है न रोचक समानता। इस समानता का कारण संयोग नहीं है बल्कि वो जड़ें हैं जो संस्कृत से बहुत भीतर से जुड़ी हुई हैं। जर्मनी के विद्वान अपना प्राचीन रिश्ता संस्कृत से मानते हैं लेकिन अंग्रेजी विद्वानों के सम्मुख भ्रम बना रहता है। चूंकि अंग्रेजी कई भाषाओं के मिश्रण से निर्मित हुई इसलिए अंग्रेज अपने शब्दकोश के निर्माण में संस्कृत अर्थात भारतीय परंपरा के मौलिक योगदान को सीधे तौर पर स्वीकार करने से बचते दिखाई देते हैं।

लेकिन यहां केवल शब्दकोश का मामला ही नहीं है। भाषा को जिन शब्दों से ढांचा मिलता है, क्रिया रूप के जो सबसे मौलिक शब्द माने जाते हैं, जिनके बगैर बोलना ही संभव नहीं, वह शब्द अंग्रेजी में संस्कृत से गए हैं, यह जानना सुखद लगता है। हमारे विश्वविद्यालय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को अंग्रेजी में जिन संक्षिप्त अक्षरों से जाना जाता है, वह BHU जो शुद्ध रूप में 'भू' कहा जाएगा, यह 'भू' शब्द ही अपने धातु रूप में अंग्रेजी क्रिया रूप की आधारभूमि बनकर खड़ा है। अंग्रेजी भाषा परंपरा का प्राणदाता अगर कोई शब्द है तो वह संस्कृत का "भव" और "अस" धातु रूप है।

ऊपरी तौर पर जो अर्थ "भू" या "भव" धातु का संस्कृत में है वही अर्थ be और उसी से जुड़े और निकले is, am और are का है। भूतकाल में यही be was और were में परिवर्तित हो जाता है। कैसे बदलता जाता है, इसका पूरा व्याकरण है। यहां हम इसी पर कुछ चर्चा करेंगे।

Am शब्द संस्कृत के अस्मि से उत्पन्न हुआ। अस्मि यानी हूं। अस्मि से ही अस्मिता शब्द आया है जिसके मायने किसी के परिचय और पहचान से है। यही अस्मि शब्द स्लावियन परंपराके JESMI जेस्मि, लिथुआनियन में एस्मि शब्द से लैटिन के इस्मी, जर्मन के एज़मी से होते हुए ओल्ड नॉर्स में एमि से गुजरते हुए AM होकर अंग्रेजी भाषा में सम्मिलित हो गया।

IS:यही बात IS क्रिया रूप शब्द के साथ है। Is यानी इज़ शब्द भी स्लावियन परंपरा से ग्रीक, लैटिन, जर्मन होते हुए अंग्रेजी में आया। संस्कृत में जिसे अस्ति कहा गया है, जिसका अर्थ किसी के अस्तित्व के रूप में 'है' यानी होने के रूप में जाना जाता है। अर्थात जो संस्कृत में अस्ति है, उसे ही ग्रीक में एस्ति, लैटिन में एस्त और स्लावियन में इस्त और अंग्रेजी में इस is या इज़ कहा गया है।

WAS:अंग्रेजी का was शब्द संस्कृत के आसीत् और कुछ स्त्रोतों में वसति का अपभ्रंश बनकर अंग्रेज जाति के पास पहुंचा। आसीत का मतलब है था और वसति का मतलब है रहना या समय बिताना। ओल्ड जर्मन में इसे वासात, वासातन या वासानन और ओल्ड सैक्सोन में वेसान, फ्रीजियन में वसात और कुछ स्त्रोतों मे वासीत कहा कहा गया है। इसी में से पहले wes और उसके बाद was का जन्म हुआ। अब प्रश्न है कि इज़ is और वॉज़ was के ये बहुवचन are और were कहां से आए। आइए इसका भी रहस्य जान लेते हैं।

ARE, WERE: संस्कृत में भव धातु लुट लकार में जब बहुवचन में बदलती है तो उसके आगे अर् प्रत्यय जुड़ जाता है। दो लोगों के लिए यह अरौ और दो से ज्यादा लोगों के लिए आरः के रूप में लिखी जाती है। जैसे भव धातु लुट लकार में प्रथम पुरुष में अगर लिखी जाएगी तो उसका रूप होगा- भविता, भवितारौ, भवितारः। यहां भविता एकवचन, भवितारौ दो वचन और भवितारः बहुवचन के लिए आया है। इज़ और वॉज़ अपने बहुवचन के लिए आर और वर में बदल जाते हैं तो इसके पीछे अंग्रेजी को सूत्र संस्कृत से प्राप्त हुआ है। इस प्रकार सिद्ध होता है कि आर are और वर were का रहस्य इसी भव के बहुवचन रूप में छिपा है।

प्रश्न है कि क्या भारत की संस्कृत परंपरा ने केवल शब्द, व्याकरण और धातु रूपों को लेकर ही विश्व की ज्ञान परंपरा को समृद्ध बनाया था? वस्तुतः अंग्रेजी के प्राचीन शब्द भंडार का विचार करें तो संसार को यह स्वीकार करने में संकोच नहीं करना चाहिए कि जिन शब्दों की उत्पत्ति का कारण आज अंग्रेज जाति के पास नहीं है, उन शब्दों की उत्पत्ति और पूरी भावना के साथ उसकी परंपरा हमें भारत में प्राचीन काल से दिखाई पड़ती है। हम अगर आज के राजनीतिक संदर्भ में चर्चा करें तो अंग्रेजी के राजनीतिक शब्दों का भंडार अपनी मूर्त प्रणाली और परंपरा के साथ भारत की संस्कृत परंपरा से ही उधार लिया गया दिखता है।

परिकल्पना, शोध एवं लेखनः
प्रो. राकेश कुमार उपाध्याय, भारत अध्ययन केंद्र,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

विश्व मे मानवता की मूल सनातन संस्कृति

शिव प्रताप शुक्ल

सनातन, अर्थात जो सदा से ही विद्यमान है। सनातन, अर्थात जो समय के साथ अविरल प्रवाहमान है। सनातन जिसे वैदिक हिन्दू संस्कृति के रूप में विश्व प्रमाणित करता है। सनातन , अर्थात जो पृथ्वी की सभी सभ्यताओं के मूल निहित है। सनातन जो हिन्दू संस्कृति का जीवन संविधान है। सनातन जिसमे पृथ्वी के समस्त प्राणियों, वनस्पतियों , चर, अचर , समस्त के कल्याण की शक्ति है। जो भारत वर्ष की आत्मा है। जिसमे विश्व का कल्याण निहित है। इस सनातन की प्राचीन उपस्थिति के प्रमाण से आज विश्व का प्रत्येक भूभाग भरा पड़ा है। सनातन में सांस्कृतिक उपासना और जीवन शैली के प्रमाण आधुनिक विश्व के प्रत्येक भूभाग में मिल रहे हैं और विश्व उन्हें स्वीकार कर रहा है। जब मैं आधुनिक विश्व की बात लिख रहा हूँ तो यह स्पष्ट करना भी आवश्यक है कि प्राचीन और वर्तमान भूगोल में परिवर्तन के कारण यह शब्दावली प्रयोग करना आवश्यक है। यह इसलिए बहुत आवश्यक है क्योंकि कुछ आधुनिक शिक्षा से उपजे लोग भारत को 70 वर्ष पुराना राष्ट्र प्रमाणित करने की कोशिश करते हैं। उन्हें यह बिल्कुल नही पता कि भारत है क्या, कितना पुराना या नया है। भारत का भूगोल कब से कैसे बनता है। विष्णु पुराण में स्पष्ट लिखा है-

उत्तरं यत समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणं।
वर्ष तद भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः।।

इसका अर्थ यह है कि समुद्र के उत्तर से ले कर हिमालय के दक्षिण में जो देश है वही भारत है और यहाँ के लोग भारतीय हैं। अब यहां यह जान लेना भी बहुत आवश्यक है कि समुद्र की अवस्थिति वास्तव में है कहाँ। सबसे पहले बात करते हैं पृथ्वी के भूगोल यानि ज्योग्राफी की। आज हमे वर्तमान की ज्योग्राफी में यह पढ़ाया जाता है कि पैंजिया पृथ्वी का पहला महाद्वीप या यूं कहे सुपर महाद्वीप था। अन्य सभी नवीन महाद्वीप (एशिया, अफ्रीका, उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका, यूरोप, अंटार्कटिका एवं ऑस्ट्रेलिया) का जन्मदाता भी यही महाद्वीप है। टेकटोनिक प्लेट्स में गति बदलाव या विखंडन के कारण पैंजिया महाद्वीप में खंडन हुआ और यह टूटकर इन सात महाद्वीपों में बंट गया। गोंडवाना पैंजिया के दक्षिणी भाग को कहते हैं। गोंडवाना भूमि में प्रायद्वीप भारत, दक्षिणी अमेरिका, दक्षिणी अफ्रीका और अंटार्कटिका समाहित है। अंगारा पैंजिया के उत्तरी भाग को कहते हैं। अंगारा भूमि में एशिया (प्रायद्वीपीय भारत

"

महाभारत में पृथ्वी का वर्णन आता है। सुदर्शन नामक यह द्वीप चक्र की भांति गोलाकार स्थित है, जैसे पुरुष दर्पण में अपना मुख देखता है, उसी प्रकार यह द्वीप चन्द्रमण्डल में दिखाई देता है। इसके दो अंशों में पिप्पल और दो अंशों में महान शश (खरगोश) दिखाई देता है। अर्थात, दो अंशों में पिप्पल का अर्थ पीपल के दो पत्तों और दो अंशों में शश अर्थात खरगोश की आकृति के समान दिखाई देता है। आप कागज पर पीपल के दो पत्तों और दो खरगोश की आकृति बनाइए और फिर उसे उल्टा करके देखिए, आपको धरती का मानचित्र दिखाई देगा।

(लेखक सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ,संसंद की उच्च सदन के सदस्य और भाजपा के मुख्य सचेतक एवं राष्ट्रवादी चिंतक हैं।)

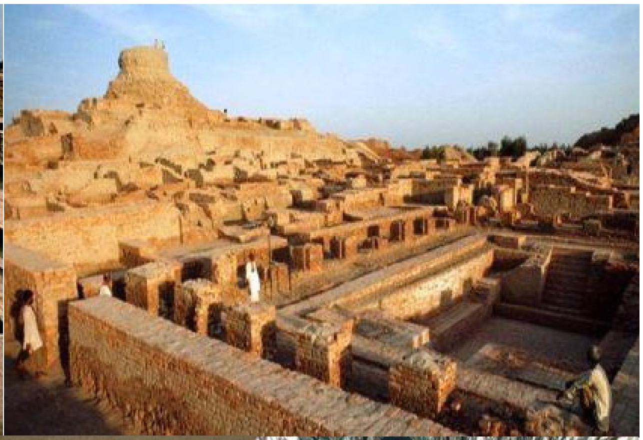

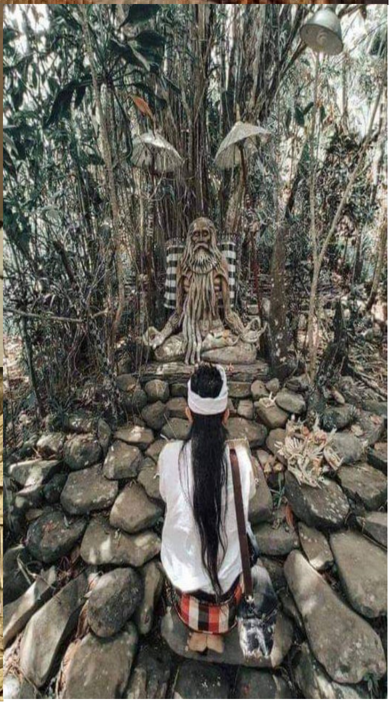

को छोड़कर), उत्तरी अमेरिका एवं यूरोप समाहित है।

इससे पूर्व कि सनातन संस्कृति के वैश्विक परिदृश्य को रेखांकित किया जाय, यह जान लेना बहुत आवश्यक है कि वास्तव में भारत के अस्तित्व के प्रमाण किस रूप में लाखों वर्षो से हमारे शास्त्रीय परंपराओं में व्यवस्थित हैं।प्रामाणिक ग्रंथ मत्स्यमहापुराण में सभी सात प्रधान महाद्वीपों के बारे में बताया गया है। सात द्वीपों में जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप,शाल्मलद्वीप, कुशद्वीप, क्रौंच द्वीप, शाकद्वीप तथा पुष्करद्वीप का वर्णन है। जम्बूद्वीप का विस्तार से भौगोलिक वर्णन है। अर्थात आज जिसे एशिया के रूप में हम पाते है वही जम्बूद्वीप के नाम से जाना जाता था। इस द्वीप का माप और भूगोल भी उपलब्ध है। शास्त्र कहता है-

'जम्बूद्वीपः समस्तानामेतेषां मध्य संस्थितः,

भारतं प्रथमं वर्षं ततः किंपुरुषं स्मृतम्,

हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विज।

रम्यकं चोत्तरं वर्षं तस्यैवानुहिरण्यम्,

उत्तराः कुरवश्चैव यथा वै भारतं तथा।

नव साहस्त्रमेकैकमेतेषां द्विजसत्तम्,

इलावृतं च तन्मध्ये सौवर्णो मेरुरुच्छितः।

भद्राश्चं पूर्वतो मेरोः केतुमालं च पश्चिमे।

जम्बूद्वीप को बाहर से लाख योजन वाले खारे पानी के वलयाकार समुद्र ने चारों ओर से घेरा हुआ है। जम्बू द्वीप का विस्तार एक लाख योजन है। जम्बू (जामुन) नामक वृक्ष की इस द्वीप पर अधिकता के कारण इस द्वीप का नाम जम्बू द्वीप रखा गया था।

इस तथ्य को विष्णु पुराण इस रूप में कहता है-

एकादश शतायामाः पादपागिरिकेतवः जंबूद्वीपस्य सांजबूर्नाम हेतुर्महामुने।

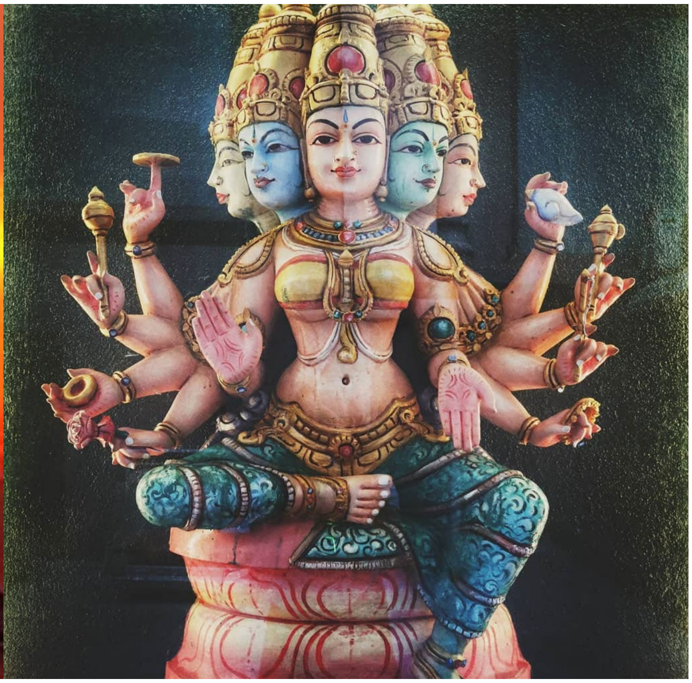

भारतवर्ष का अर्थ है राजा भरत का क्षेत्र और इन्ही राजा भरत के पुत्र का नाम सुमति था। इस विषय में वायु पुराण कहता है—

सप्तद्वीपपरिक्रान्तं जम्बूदीपं निबोधत।

अग्नीध्रं ज्येष्ठदायादं कन्यापुत्रं महाबलम।।

प्रियव्रतोअभ्यषिञ्चतं जम्बूद्वीपेश्वरंनृपम्।।

तस्य पुत्रा बभूवुर्हि प्रजापतिसमौजसः।

ज्येष्ठो नाभिरिति ख्यातस्तस्य किम्पुरूषोअनुजः।।

नाभेर्हि सर्गं वक्ष्यामि हिमाह्व तन्निबोधत।

ऋग्वेद में इस स्थान को 'सप्तसिंधु' प्रदेश कहा गया है। ऋग्वेद के नदी सूक्त (10.75) में इस क्षेत्र में प्रवाहित होने वाली नदियों का वर्णन मिलता है, जो इस प्रकार हैं- कुभा (काबुल नदी), क्रुगु (कुर्रम), गोमती (गोमल), सिंधु, परुष्णी (रावी), शुतुद्री (सतलज), वितस्ता (झेलम), सरस्वती, यमुना तथा गंगा।

महाभारत में पृथ्वी का वर्णन आता है। सुदर्शन नामक यह द्वीप चक्र की भांति गोलाकार स्थित है, जैसे पुरुष दर्पण में अपना मुख देखता है, उसी प्रकार यह द्वीप चन्द्रमण्डल में दिखाई देता है। इसके दो अंशों में पिप्पल और दो अंशों में महान शश (खरगोश) दिखाई देता है। अर्थात, दो अंशों में पिप्पल का अर्थ पीपल के दो पत्तों और दो अंशों में शश अर्थात खरगोश की आकृति के समान दिखाई देता है। आप कागज पर पीपल के दो पत्तों और दो खरगोश की आकृति बनाइए और फिर उसे उल्टा करके देखिए, आपको धरती का मानचित्र दिखाई देगा। महाभारत के भीष्म पर्व में महर्षि वेदव्यास जी लिखते हैं-

'सुदर्शनं प्रवक्ष्यामि द्वीपं तु कुरुनन्दन।

परिमण्डलो महाराज द्वीपोऽसौ चक्रसंस्थितः॥

यथा हि पुरुषः पश्येदादर्शे मुखमात्मनः।

एवं सुदर्शनद्वीपो दृश्यते चन्द्रमण्डले॥

द्विरंशे पिप्पलस्तत्र द्विरंशे च शशो महान्।।

इसी प्रकार ब्रह्म पुराण, अध्याय 18 में जम्बूद्वीप के महान होने का प्रतिपादन है।इसमे वर्णित है कि भारत भूमि में लोग तपश्चर्या करते हैं, यज्ञ करने वाले हवन करते हैं तथा परलोक के लिए आदरपूर्वक दान भी देते हैं। जम्बूद्वीप में सत्पुरुषों के द्वारा यज्ञ भगवान् का यजन हुआ करता है। यज्ञों के कारण यज्ञ पुरुष भगवान् जम्बूद्वीप में ही निवास करते हैं। इस जम्बूद्वीप में भारतवर्ष श्रेष्ठ है। यज्ञों की प्रधानता के कारण इसे (भारत को) को कर्मभूमि तथा और अन्य द्वीपों को भोग- भूमि कहते हैं।

तपस्तप्यन्ति यताये जुह्वते चात्र याज्विन।।

दानाभि चात्र दीयन्ते परलोकार्थ मादरात्॥

पुरुषैयज्ञ पुरुषो जम्बूद्वीपे सदेज्यते।।

यज्ञोर्यज्ञमयोविष्णु रम्य द्वीपेसु चान्यथा॥

अत्रापि भारतश्रेष्ठ जम्बूद्वीपे महामुने।।

यतो कर्म भूरेषा यधाऽन्या भोग भूमयः॥

इसी तरह अगर शक्तिपीठों का भौगोलिक स्थिति देखे तो वे बलूचिस्तान से लेकर त्रिपुरा, कश्मीर से कन्याकुमारी बांग्लादेश

और जाफना तक फैले हुए हैं। यह एक बनावटी स्थिति नहीं है। शक्तिपीठों की वैश्विक उपस्थिति प्रमाणित है। अभी हाल ही में भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री ने बांग्लादेश में एक शक्तिपीठ में जाकर पूजा भी की थी।

आधुनिक विश्व और सनातन वैदिक हिंदुत्व

अब बात आती है कि यह जो विशाल भूभाग पर पल्लवित पुष्पित सनातन संस्कृति रही है इसका शेष विश्व से क्या संबंध है। इससे पूर्व कि विषय के विस्तार में चलें, यहां एक उक्ति में यह लिखना समीचीन लगता है कि पृथ्वी यदि कहीं भी जीवन है और मनुष्य पहुँच सका है तो यह यकीन मानिए उसके मूल में सनातन वैदिक संस्कृति ही रही है जो किसी न किसी रूप में वहां की सभ्यता में आज भी विद्यमान है।

इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि जब आज पश्चिम का आधुनिक विज्ञान भी यह मानने लगा है कि धरती पर मनुष्य तब से है जब तीनो अब्रह्मियन पंथों या मजहबो का कहीं दूर दूर तक अस्तित्व नही था। इन मजहबो का कुल इतिहास 4500 वर्ष पुराना है। सबसे पहले यहूदी, फिर इसाई और महज 1400 साल पहले इस्लाम। स्वाभाविक है कि इस काल खंड से पूर्व उन स्थानों पर जो मनुष्य रहते थे वे यदि यहूदी नही थे, इसाई नही थे, इस्लाम के नही थे तो कुछ अन्य उपासना पद्धति के तो रहे ही होंगे।

आज दुनिया के अनेक देशों में पुरातात्विक या सामान्य खुदाई में जिस प्रकार से सनातन वैदिक संस्कृति के स्थापित देवी देवताओं की प्रतिमाएं मिल रही हैं , अब उन पर और उन स्थानों के नए इतिहास पर भी गहन शोध की आवश्यकता आ गयी है। मैक्सिको, अमेरिका, रूस, कजाकिस्तान, ताजिकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान, उजबेकिस्तान, किर्गिस्तान, तुर्की, सीरिया, इराक, स्पेन, इंडोनेशिया, चीन आदि सभी जगह पर हिन्दू धर्म से जुड़े साक्ष्य पाए गए हैं। विद्वानों अनुसार अरब की यजीदी, सबाइन, सबा, कुरैश आदि कई जातियों का प्राचीन धर्म सनातन हिन्दू वैदिक ही था। मैक्सिको में एक खुदाई के दौरान गणेश और लक्ष्मी की प्राचीन मूर्तियां पाई गईं थी।

'मैक्सिको' शब्द संस्कृत के 'मक्षिका' शब्द से आता है और मैक्सिको में ऐसे हजारों प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है। दूसरी ओर स्पेन में हजारों वर्ष पुराना एक मंदिर है जिस पर भगवान विष्णु की प्रतिमा अंकित है। जिस प्रकार के पुरातात्विक प्रमाण इस समय मिल रहे हैं वे प्रमाणित करते हैं कि विश्व की प्राचीन सभ्यताओं से सनातन वैदिक हिन्दू संस्कृति का सीधा जुड़ाव रहा है।पृथ्वी पर हिन्दू वैदिक धर्म ने ही लोगों को सभ्य बनाने के लिए अलग-अलग क्षेत्रों में धार्मिक विचारधारा की नए-नए रूप में स्थापना की थी। आज दुनियाभर की धार्मिक संस्कृति और समाज में हिन्दू धर्म की झलक देखी जा सकती है चाहे वह यहूदी, यजीदी, रोमा, पारसी, बौद्ध धर्म हो या ईसाई-इस्लाम जैसे मजहब ही क्यों न हो।भारतीय लोगों ने इस दौर में विश्वमभर में विशालकाय मंदिर, भवन और नगरों का निर्माण कार्य किया किया था। हिन्दू धर्म ने अपनी जड़ें यूरोप से लेकर एशिया तक फैला रखी थी, जिसके प्रमाण आज भी मिलते हैं। आज हम आपको विश्व की ऐसी ही जगहों के बारे में बता रहे हैं, जिनके बारे में कहा जाता है कि यहां कभी सनातन वैदिक हिन्दू धर्म अपने चरम पर हुआ करता था।

इंडोनेशिया

इसी क्रम में बहुत आवश्यक लगता है कि इंडोनेशिया की चर्चा की जाय। यहां के साक्ष्य ऐसे हैं जो अचंभित भी करते हैं और गर्व की अनुभूति भी कराते हैं।इंडोनेशिया कभी सनातन वैदिक हिन्दू राष्ट्र हुआ करता था, लेकिन इस्लामिक उत्थान के बाद यह आज मुस्लिम राष्ट्र है। शोधकर्ताओं का मानना है कि जहां आज इंडोनेशियन इस्लामिक यूनिवर्सिटी है वहां कभी हिन्दू मंदिर हुआ करता था, जिसमें शिव और गणेश की पूजा की जाती थी। यहां से एक ऐतिहासिक शिवलिंग भी मिला है। इंडोनेशिया के एक द्वीप है बाली जो हिन्दू बहुल क्षेत्र है। यहां के हिन्दुओं ने अपने धर्म और संस्कृति को नहीं छोड़ा था। बाली में एक इमारत के निर्माण की खुदाई के दौरान मजदूरों को मंदिर के कुछ अंश मिले जिसके बाद यह खबर बाली के ऐतिहासिक संरक्षण विभाग को दी गई जिसने खुदाई करने पर एक विशाल हिन्दू इमारत को पाया, जो कभी हिन्दू धर्म का केंद्र था। यह विशालकाय मंदिर आज बाली द्वीप की पहचान बन गया है।

इंडोनेशिया के द्वीप बाली द्वीप पर हिन्दुओं के कई प्राचीन मंदिर हैं, जहां एक गुफा मंदिर भी है। इस गुफा मंदिर को गोवा गजह गुफा और एलीफेंटा की गुफा कहा जाता है। 19 अक्टूबर 1995 को इसे विश्व धरोहरों में शामिल किया गया। यह गुफा भगवान शंकर को समर्पित है। यहां 3 शिवलिंग बने हैं। देश-विदेश से पर्यटक इसे देखने आते हैं।

हमारे प्राचीन साहित्य और शास्त्रों में इसका विशद वर्णन आता है। सुकेश के तीन पुत्र थे- माली, सुमाली और माल्यवान। माली, सुमाली और माल्यवान नामक तीन दैत्यों द्वारा त्रिकुट सुबेल (सुमेरु) पर्वत पर बसाई गई थी लंकापुरी। माली को मारकर देवों और यक्षों ने कुबेर को लंकापति बना दिया था। रावण की माता कैकसी सुमाली की पुत्री थी। अपने नाना के उकसाने पर रावण ने अपनी सौतेली माता इलविल्ला के पुत्र कुबेर से युद्ध की ठानी थी और लंका को फिर से राक्षसों के अधीन लेने की सोची। रावण ने सुंबा और बाली द्वीप को जीतकर अपने शासन का विस्तार करते हुए अंगद्वीप, मलय द्वीप, वराह द्वीप, शंख द्वीप, कुश द्वीप, यव द्वीप और आंध्रालय पर विजय प्राप्त की थी। इसके बाद रावण ने लंका को अपना लक्ष्य बनाया। लंका पर कुबेर का राज्य था, परंतु पिता ने लंका के लिए रावण को दिलासा दी तथा कुबेर को कैलाश पर्वत के आसपास के त्रिविष्टप (तिब्बत) क्षेत्र में रहने के लिए कह दिया। इसी तारतम्य में रावण ने कुबेर का पुष्पक विमान भी छीन लिया। आज के युग अनुसार रावण का राज्य विस्तार, इंडोनेशिया, मलेशिया, बर्मा, दक्षिण भारत के कुछ राज्य और संपूर्ण श्रीलंका पर रावण का राज था।

कंबोज, कम्पूचिया अब कंबोडिया

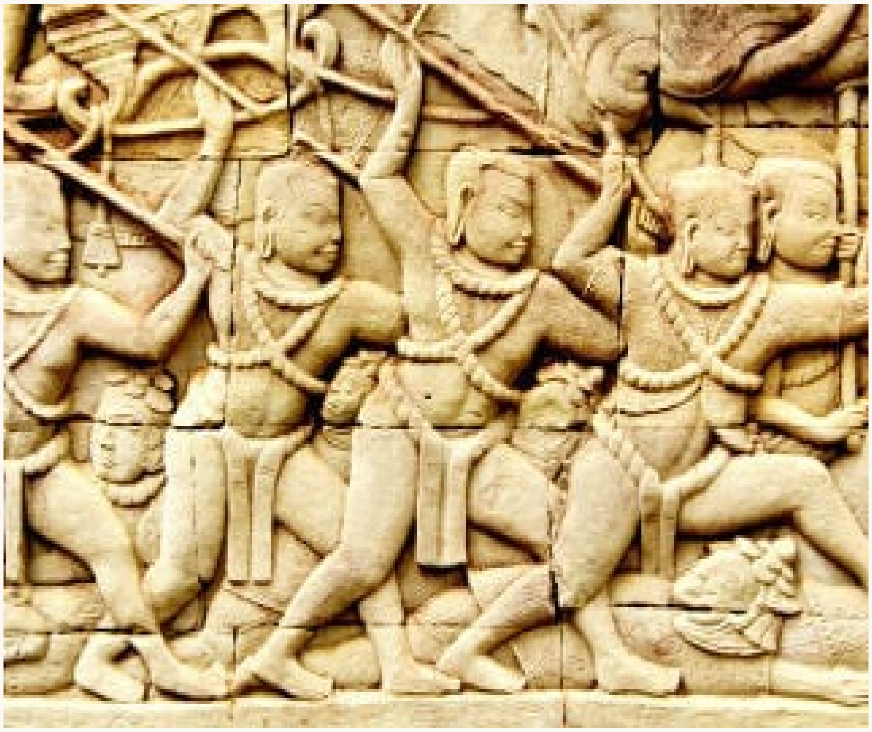

अब बात करते हैं कंबोज देश यानी आधुनिक कंबोडिया की। विश्व का सबसे बड़ा हिन्दू मंदिर परिसर तथा विश्व का सबसे बड़ा धार्मिक स्मारक कंबोडिया में स्थित है। यह कंबोडिया के अंकोर में है जिसका पुराना नाम 'यशोधरपुर' था। इसका निर्माण सम्राट सूर्यवर्मन द्वितीय (1112-53ई.) के शासनकाल में हुआ था। यह विष्णु मन्दिर है जबकि इसके पूर्ववर्ती शासकों ने प्रायः शिवमंदिरों का निर्माण किया था। कंबोडिया में बड़ी संख्या में हिन्दू और बौद्ध मंदिर हैं, जो इस बात की गवाही देते हैं कि कभी यहां भी हिन्दू धर्म अपने चरम पर था।

पौराणिक काल का कंबोजदेश

कल का कंपूचिया और आज का कंबोडिया। पहले हिंदू रहा और फिर बौद्ध हो गया। सदियों के काल खंड में 27 राजाओं ने राज किया। कोई हिंदू रहा, कोई बौद्ध। यही वजह है कि पूरे देश में दोनों धर्मों के देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बिखरी पड़ी हैं। भगवान बुद्ध तो हर जगह हैं ही, लेकिन शायद ही कोई ऐसी खास जगह हो, जहाँ ब्रह्मा, विष्णु, महेश में से कोई न हो और फिर अंगकोर वाट की बात ही निराली है। ये दुनिया का सबसे बड़ा विष्णु मंदिर है।

विश्व विरासत में शामिल अंगकोर वाट मंदिर-समूह को अंगकोर के राजा सूर्यवर्मन द्वितीय ने बारहवीं सदी में बनवाया था। चौदहवीं सदी में बौद्ध धर्म का प्रभाव बढ़ने पर शासकों ने इसे बौद्ध स्वरूप दे दिया। बाद की सदियों में यह गुमनामी के अंधेरे में खो गया। एक फ्रांसिसी पुरातत्वविद ने इसे खोज निकाला। आज यह मंदिर जिस रूप में है, उसमें भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण का बहुत योगदान है। सन् 1986 से 93 तक एएसआई ने यहाँ संरक्षण का काम किया था।

अंगकोर वाट की दीवारें रामायण और महाभारत की कहानियाँ कहती हैं। यह मंदिर लगभग एक स्क्वेयर मील क्षेत्रफल में फैला हुआ है। यहां की दीवारों पर पर छपे चित्र और उकेरी गई मूर्तियां हिन्दू धर्म के गौरवशाली इतिहास की कहानी को बयां करती हैं। सीताहरण, हनुमान का अशोक वाटिका में प्रवेश, अंगद प्रसंग, राम-रावण युद्ध, महाभारत जैसे अनेक दृश्य बेहद बारीकी से उकेरे गए हैं। अंगकोर वाट के आसपास कई प्राचीन मंदिर और उनके भग्नावशेष मौजूद हैं। इस क्षेत्र को अंगकोर पार्क कहा जाता है। सियाम रीप क्षेत्र अपने आगोश में सवा तीन सौ से ज्यादा मंदिर समेटे हुए है।

रूस में सनातन वैदिक हिंदुत्व

अब चर्चा करते हैं आधुनिक विश्व की एक महाशक्ति रूस की प्राचीनता के बारे में । यहां तो सनातन संस्कृति के प्रमाणों के अकूत भंडार ही दिखता है।अभी महज एक हजार वर्ष पहले रूस ने ईसाई धर्म स्वीकार किया। माना जाता है कि इससे पहले यहां असंगठित रूप से हिन्दू धर्म प्रचलित था और उससे भी पहले संगठित रूप से वैदिक पद्धति के आधार पर हिन्दू धर्म प्रचलित था। वैदिक धर्म का पतन होने के कारण यहां मनमानी पूजा और पुजारियों का बोलबाला हो गया अर्थात हिन्दू धर्म का पतन हो गया।

यही कारण था कि 10वीं शताब्दी के अंत में रूस की कियेव रियासत के राजा व्लादीमिर चाहते थे कि उनकी रियासत के लोग देवी-देवताओं को मानना छोड़कर किसी एक ही ईश्वर की पूजा करें। इसके बाद रूसी राजा व्लादीमिर ने यह तय कर लिया कि वह और उसकी कियेव रियासत की जनता ईसाई धर्म को ही अपनाएंगे। रूस की कियेव रियासत के राजा व्लादीमिर ने जब आर्थोडॉक्स ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया और अपनी जनता से भी इस धर्म को स्वीकार करने के लिए कहा तो उसके बाद भी कई वर्षों तक रूसी जनता अपने प्राचीन देवी और देवताओं की पूजा भी करते रहे थे। बाद में ईसाई पादरियों के निरंतर प्रयासों के चलते रूस में ईसाई धर्म का व्यापक प्रचार-प्रसार हो सका है और धीरे-धीरे रूस के प्राचीन धर्म को नष्ट कर दिया गया। प्राचीनकाल के रूस में लोग जिन शक्तियों की पूजा करते थे, उन्हें तथाकथित विद्वान लोग अब प्रकृति-पूजा कहकर पुकारते हैं। सबसे प्रमुख देवता थे- विद्युत देवता या बिजली देवता। आसमान में चमकने वाले इस वज्र-देवता का नाम पेरून था। कोई भी संधि या समझौता करते हुए इन पेरून देवता की ही कसमें खाई जाती थीं और उन्हीं की पूजा मुख्य पूजा मानी जाती थी। प्राचीनकाल में रूस के दो और देवताओं के नाम थे- रोग और स्वारोग। सूर्य देवता के उस समय के जो नाम हमें मालूम हैं, वे हैं- होर्स, यारीला और दाझबोग। सूर्य के अलावा प्राचीनकालीन रूस में कुछ मशहूर देवियां भी थीं जिनके नाम हैं- बिरिगिन्या, दीवा, जीवा, लादा, मकोश और मरेना। प्राचीनकालीन रूस की यह मरेना नाम की देवी जाड़ों की देवी थी और उसे मौत की देवी भी माना जाता था। हिन्दी का शब्द मरना कहीं इसी मरेना देवी के नाम से तो पैदा नहीं हुआ? इसी तरह रूस का यह जीवा देवता कहीं हिन्दी का 'जीव' ही तो नहीं? 'जीव' यानी हर जीवंत आत्मा। रूस में यह जीवन की देवी थी। रूस में आज भी पुरातत्ववेताओं को कभी-कभी खुदाई करते हुए प्राचीन रूसी देवी-देवताओं की लकड़ी या पत्थर की बनी मूर्तियां मिल जाती हैं। कुछ मूर्तियों में दुर्गा की तरह अनेक सिर और कई-कई हाथ बने होते हैं। रूस के प्राचीन देवताओं और हिन्दू देवी-देवताओं के बीच बहुत ज्यादा समानता है। ध्यान देने वाला तथ्य यह है कि प्राचीनकाल में रूस के मध्यभाग को जम्बूद्वीप का इलावर्त कहा जाता था। यहां देवता और दानव लोग रहते थे। अभी कुछ वर्ष पूर्व ही रूस में वोल्गा प्रांत के स्ताराया मायना गांव में विष्णु की मूर्ति मिली थी जिसे 7-10वीं ईस्वी सन् का बताया गया। यह गांव 1700 साल पहले एक प्राचीन और विशाल शहर हुआ करता था। स्ताराया मायना का अर्थ होता है गांवों की मां। उस काल में यहां आज की आबादी से 10 गुना ज्यादा आबादी में लोग रहते थे। माना जाता है कि रूस में वाइकिंग या स्लाव लोगों के आने से पूर्व शायद वहां भारतीय होंगे या उन पर भारतीयों ने

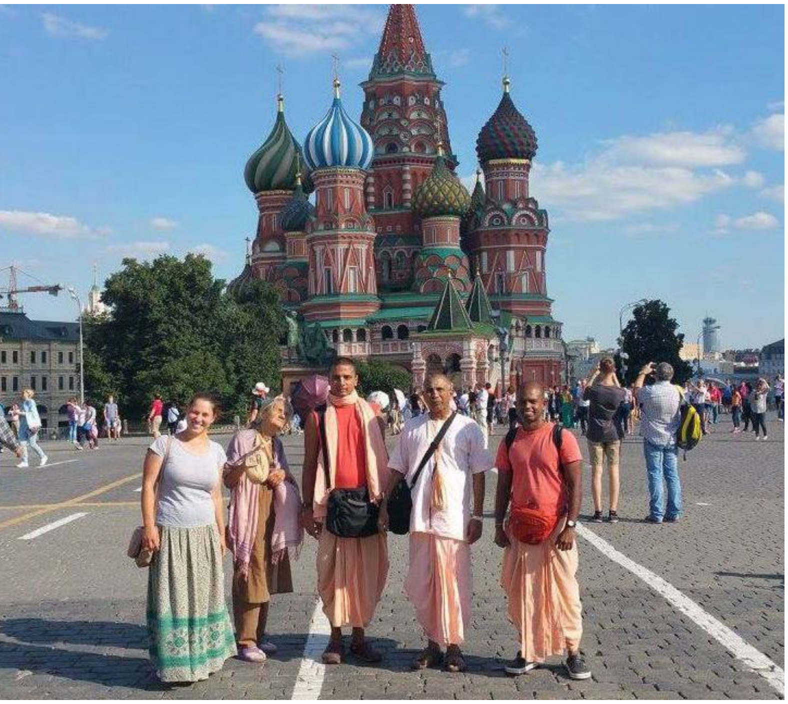

राज किया होगा।

अब ध्यान देने वाली बात यह है कि महाभारत में अर्जुन के उत्तर-कुरु तक जाने का उल्लेख है। कुरु वंश के लोगों की एक शाखा उत्तरी ध्रुव के एक क्षेत्र में रहती थी। उन्हें उत्तर कुरु इसलिए कहते हैं, क्योंकि वे हिमालय के उत्तर में रहते थे। महाभारत में उत्तर-कुरु की भौगोलिक स्थिति का जो उल्लेख मिलता है वह रूस और उत्तरी ध्रुव से मिलता-जुलता है। अर्जुन के बाद बाद सम्राट ललितादित्य मुक्तापिद और उनके पोते जयदीप के उत्तर कुरु को जीतने का उल्लेख मिलता है। यह विष्णु की मूर्ति शायद वही मूर्ति है जिसे ललितादित्य ने स्त्री राज्य में बनवाया था। चूंकि स्त्री राज्य को उत्तर कुरु के दक्षिण में कहा गया है तो शायद स्ताराया मैना पहले स्त्री राज्य में हो।

उत्खनन में 2007 को यहां एक विष्णु मूर्ति पाई गई । इस स्थान पर 7 वर्षों से उत्खनन कर रहे समूह के डॉ. कोजविनका कहना है कि मूर्ति के साथ ही अब तक किए गए उत्खनन में उन्हें प्राचीन सिक्के, पदक, अंगूठियां और शस्त्र भी मिले हैं। मौजूदा रूस की जगह पहले ग्रैंड डची ऑफ मॉस्को का गठन हुआ। आमतौर से यह माना जाता है कि ईसाई धर्म करीब 1,000 वर्ष पहले रूस के मौजूदा इलाके में फैला। यह भी उल्लेखनीय है कि हिन्दी के प्रख्यात विद्वान डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार रूसी भाषा के करीब 2,000 शब्द संस्कृत मूल के हैं। यूक्रेन की राजधानी कीव से भी पहले का यह गांव 1,700 साल पहले आबाद था। अब तक कीव को रूस के सभी शहरों की जन्मस्थली माना जाता रहा है, लेकिन अब यह अवधारणा बदल गई है।

दक्षिण अफ्रीका में आदिदेव भगवान शिव

सनातन संस्कृति में आदिदेव भगवान शिव सर्वत्र विद्यमान हैं। इसीलिए विश्व मे किसी न किसी रूप में उनके विग्रहों अथवा शिवलिंग की उपस्थिति है ही। भगवान शिव कहां नहीं हैं ? कहते हैं कण-कण में हैं शिव, कंकर-कंकर में हैं भगवान शंकर। कैलाश में शिव और काशी में भी शिव और अब अफ्रीका में शिव। दक्षिण अफ्रीका में भी शिव की मूर्ति का पाया जाना इस बात का प्रमाण है कि आज से 6 हजार वर्ष पूर्व अफ्रीकी लोग भी हिंदू धर्म का पालन करते थे।

दक्षिण अफ्रीका के सुद्वारा नामक एक गुफा में पुरातत्वविदों को महादेव की 6 हजार वर्ष पुरानी शिवलिंग की मूर्ति मिली जिसे कठोर ग्रेनाइट पत्थर से बनाया गया है। इस शिवलिंग को खोजने वाले पुरातत्ववेत्ता हैरान हैं कि यह शिवलिंग यहां अभी तक सुरक्षित कैसे रहा। हाल ही में दुनिया की सबसे ऊंची शिवशक्ति की प्रतिमा का अनावरण दक्षिण अफ्रीका में किया गया। इस प्रतिमा में भगवान शिव और उनकी शक्ति अर्धांगिनी पार्वती भी हैं। बेनोनी शहर के एकटोनविले में यह प्रतिमा स्थापित की गई। हिन्दुओं के आराध्य शिव की प्रतिमा में आधी आकृति शिव और आधी आकृति मां शक्ति की है। 10 कलाकारों ने 10 महीने की कड़ी मेहनत के बाद इस प्रतिमा को तैयार किया है। ये कलाकार भारत से आए थे। इस 20 मीटर ऊंची प्रतिमा को बनाने में 90 टन के करीब स्टील का इस्तेमाल हुआ है।

अमेरिका में सनातन की जड़ें

सेंट्रल अमेरिका के मोस्कुइटीए में शोधकर्ता चार्ल्स लिन्द्बेर्ग ने एक ऐसी जगह की खोज की है जिसका नाम उन्होंने ला स्यूदाद ब्लैंका दिया है जिसका स्पेनिश में मतलब व्हाइट सिटी होता है, जहां के स्थानीय लोग बंदरों की मूर्तियों की पूजा करते हैं। चार्ल्स का मानना है कि यह वही खो चुकी जगह है जहां कभी पवन पुत्र हनुमान जी का साम्राज्य हुआ करता था। एक अमेरिकन एडवेंचरर ने लिम्बर्ग की खोज के आधार पर गुम हो चुके 'Lost City Of Monkey God' की तलाश में निकले। 1940 में उन्हें इसमें सफलता भी मिली पर उसके बारे में मीडिया को बताने से एक दिन पहले ही एक कार दुर्घटना में उनकी मौत हो गई और यह राज एक राज ही बनकर रह गया। अमेरिका की प्राचीन माया सभ्यता ग्वाटेमाला, मैक्सिको, पेरू, होंडुरास तथा यूकाटन प्रायद्वीप में स्थापित थी। यह एक कृषि पर आधारित सभ्यता थी। 250 ईस्वी से 900 ईस्वी के बीच माया सभ्यता अपने चरम पर थी। इस सभ्यता में खगोल शास्त्र, गणित और कालचक्र को काफी महत्व दिया जाता था। मैक्सिको इस सभ्यता का गढ़ था। आज भी यहां इस सभ्यता के अनुयायी रहते हैं। यूं तो इस इलाके में ईसा से 10 हजार साल पहले से बसावट शुरू होने के प्रमाण मिले हैं और 1800 साल ईसा पूर्व से प्रशांत महासागर के तटीय इलाक़ों में गांव भी बसने शुरू हो चुके थे। लेकिन कुछ पुरातत्ववेत्ताओं का मानना है कि ईसा से कोई एक हजार साल पहले माया सभ्यता के लोगों ने आनुष्ठानिक इमारतें बनाना शुरू कर दिया था और 600 साल ईसा पूर्व तक बहुत से परिसर बना लिए थे। सन् 250 से 900 के बीच विशाल स्तर पर भवन निर्माण कार्य हुआ, शहर बसे। उनकी सबसे उल्लेखनीय इमारतें पिरामिड हैं, जो उन्होंने धार्मिक केंद्रों में बनाईं लेकिन फिर सन् 900 के बाद माया सभ्यता के इन नगरों का ह्रास होने लगा और नगर खाली हो गए। अमेरिकन इतिहासकार मानते हैं कि भारतीयो ने ही अमेरिका महाद्वीप पर सबसे पहले बस्तियां बनाई थीं। अमेरिका के रेड इंडियन वहां के आदि निवासी माने जाते हैं और हिन्दू संस्कृति वहां पर आज से हजारों साल पहले पहुंच गई थी। माना जाता है कि यह बसाहट महाभारतकाल में हुई थी।

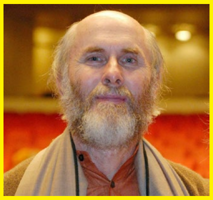

पद्म भूषण से सम्मानित अमेरिकी वैदिक टीचर डेविड फ्रॉली भारत में पंडित वामदेव शास्त्री के नाम से भी जाने जाते हैं। उनके पास योग और वैदिक विज्ञान में डी-लिट की उपाधि है। वह वेद, हिंदुत्व, योग, आयुर्वेद और वैदिक ज्योतिष पर कई पुस्तके लिख चुके हैं।

वियतनाम

वियतनाम का इतिहास 2,700 वर्षों से भी अधिक प्राचीन है। वियतनाम का पुराना नाम चम्पा था। चम्पा के लोग और चाम कहलाते थे। वर्तमान समय में चाम लोग वियतनाम और कम्बोडिया के सबसे बड़े अल्पसंख्यक हैं। आरम्भ में चम्पा के लोग और राजा शैव थे लेकिन कुछ सौ साल पहले इस्लाम यहां फैलना शुरु हुआ। अब अधिक चाम लोग मुसलमान हैं पर हिन्दू और बौद्ध चाम भी हैं।

भारतीयों के आगमन से पूर्व यहां के निवासी दो उपशाखाओं में विभक्त थे। हालांकि संपूर्ण वियतनाम पर चीन का राजवंशों का शासन ही अधिक रहा। दूसरी शताब्दी में स्थापित चंपा भारतीय संस्कृति का प्रमुख केंद्र था। यहां के चम लोगों ने भारतीय धर्म, भाषा, सभ्यता ग्रहण की थी। 1825 में चंपा के महान हिन्दू राज्य का अंत हुआ। श्री भद्रवर्मन् जिसका नाम चीनी इतिहास में फन-हु-ता (380-413 ई.) मिलता है, चंपा के प्रसिद्ध सम्राटों में से एक थे जिन्होंने अपनी विजयों ओर सांस्कृतिक कार्यों से चंपा का गौरव बढ़ाया। किंतु उसके पुत्र गंगाराज ने सिंहासन का त्याग कर अपने जीवन के अंतिम दिन भारत में आकर गंगा के तट पर व्यतीत किए। चम्पा संस्कृति के अवशेष वियतनाम में अभी भी मिलते हैं। इनमें से कई शैव मन्दिर हैं।

वियतनाम पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव : दा नंग के चाम संग्रहालय में गणेश की मूर्ति

चिली, पेरू और बोलीविया

अमेरिकन महाद्वीप के बोलीविया (वर्तमान में पेरू और चिली) में हिन्दुओं ने प्राचीनकाल में अपनी बस्तियां बनाईं और कृषि का भी विकास किया। यहां के प्राचीन मंदिरों के द्वार पर विरोचन, सूर्य द्वार, चन्द्र द्वार, नाग आदि सब कुछ हिन्दू धर्म समान हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका की आधिकारिक सेना ने नेटिव अमेरिकन की एक 45वीं मिलिट्री इन्फैंट्री डिवीजन का चिह्न एक पीले रंग का स्वास्तिक था। नाजियों की घटना के बाद इसे हटाकर उन्होंने गरूड़ का चिह्न अपनाया।

फिलीपींस

फिलीपींस में किसी समय भारतीय संस्कृति का पूर्ण प्रभाव था, पर 15वीं शताब्दी में मुसलमानों ने आक्रमण कर वहां आधिपत्य जमा लिया। आज भी फिलीपींस में कुछ हिन्दू रीति-रिवाज प्रचलित हैं।

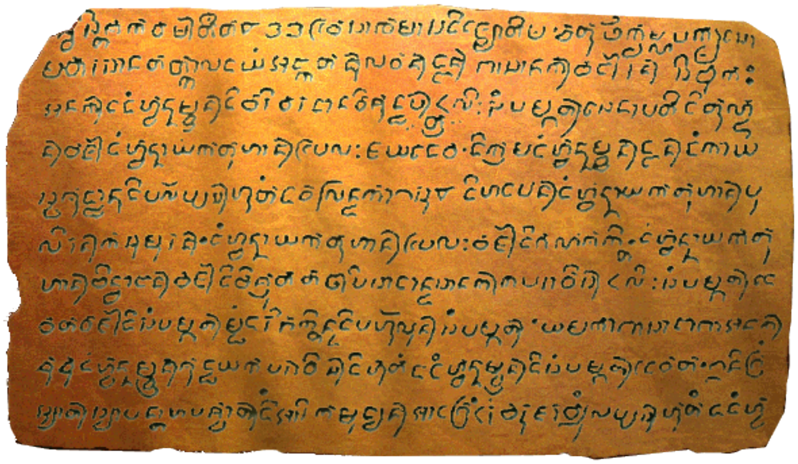

चीन में सनातन वैदिक हिन्दू संस्कृति

मोगाओ गुहाएँ (Tun-huang - Mogao) चीन के उत्तरी भाग में स्थित गांसू प्रान्त में हैं। बौद्ध कला से प्रभावित हिन्दु देवताओं की मूर्ति भी प्राप्त हुई है। उदाहरण के रूप में, 285 क्रमांक की गुहा में गजमुखी गणेश की स्थापना छठवीं शताब्दी में हुई थी।

हिन्दू उत्कीर्णन, च्वानजो संग्रहालय। ये चित्र होली के समारोह के लिए नरसिंह कथा वर्णन करता है।

अप्सराओं का चित्र, जो चीन के लुओयांग प्रात के लोंगमेन ग्रोट्टोइस् में है।

चीन के इतिहासकारों के अनुसार चीन के समुद्र से लगे औद्योगिक शहर च्वानजो में और उसके चारों ओर का क्षेत्र कभी हिन्दुओं का तीर्थस्थल था। वहां 1,000 वर्ष पूर्व के निर्मित हिन्दू मंदिरों के खंडहर पाए गए हैं। इसका सबूत चीन के समुद्री संग्रहालय में रखी प्राचीन मूर्तियां हैं। वर्तमान में चीन में कोई हिन्दू मंदिर तो नहीं है, लेकिन 1,000 वर्ष पहले सुंग राजवंश के दौरान दक्षिण चीन के फुच्यान प्रांत में इस तरह के मंदिर थे लेकिन अब सिर्फ खंडहर बचे हैं।

A Golden Kartikeya Statue viewed from the ground before entering the Hindu Batu Caves temple.

मलेशिया

मलेशिया वर्तमान में एक मुस्लिम राष्ट्र है लेकिन पहले ये एक हिन्दू राष्ट्र था। मलय प्रायद्वीप का दक्षिणी भाग मलेशिया देश के नाम से जाना जाता है। इसके उत्तर में थाइलैण्ड, पूर्व में चीन का सागर तथा दक्षिण और पश्चिम में मलाक्का का जलडमरूमध्य है। उत्तर मलेशिया में बुजांग घाटी तथा मरबाक के समुद्री किनारे के पास पुराने समय के अनेक हिन्दू तथा बौद्ध मंदिर आज भी हैं। मलेशिया अंग्रेजों की गुलामी से 1957 में मुक्त हुआ। वहां पहाड़ी पर बटुकेश्वर का मंदिर है जिसे बातू गुफा मन्दिर कहते हैं। वहां पहुंचने के लिए लगभग 276 सीढ़ियां चढ़नी पड़ती हैं। पहाड़ी पर कुछ प्राचीन गुफाएं भी हैं। पहाड़ी के पास स्थित एक बड़े मंदिर देखने में हनुमानजी की भी एक भीमकाय मूर्ति लगी है।

Sri Sunderaraja Perumal Temple is a South Indian-style Hindu temple in Malaysia.

सिंगापुर

सिंगापुर एक छोटा सा राष्ट्र है। यह ब्राईदेश दक्षिण में मलय महाद्वीप के दक्षिण सिरे के पास छोटा-सा द्वीप है। इसके उत्तर में मलेशिया का किनारा, पूर्व की ओर चीन का समुद्र और दक्षिण-पश्चिम की ओर मलक्का का जलडमरू- मध्य है। 14वीं सदी तक सिंगापुर टेमासेक नाम से जाना जाता था। सुमात्रा के पॉलेमबग का राजपुत्र संगनीला ने इसे बासाया था तब इसका नाम सिंहपुर था। यहां इस बात के चिन्ह मिलते हैं कि उनका कभी हिन्दू धर्म से भी निकट का संबंध था। 1930 तक उनकी भाषा में संस्कृत भाषा के शब्दों का समावेश है। उनके नाम हिन्दुओं जैसे होते थे और कुछ नाम आज भी अपभ्रंश रूप में हिन्दू नाम ही हैं।

Sri Kamakshi Amman temple in Hamm.

थाइलैंड

थाइलैंड एक बौद्ध राष्ट्र है। यहां पर प्राचीनकाल में हिन्दू और बौद्ध दोनों ही धर्म और संस्कृति का एक साथ प्रचलन था लेकिन अब हिन्दू नगण्य है। खैरात के दक्षिण-पूर्व में कंबोडिया की सीमा के पास उत्तर में लगभग 40 कि.मी. की दूरी पर युरिराम प्रांत में प्रसात फ्नाम रंग नामक सुंदर मंदिर है। यह मंदिर आसपास के क्षेत्र से लगभग 340 मी. ऊंचाई पर एक सुप्त ज्वालामुखी के मुख के पास स्थित है। इस मंदिर में शंकर तथा विष्णु की अति सुंदर मूर्ति हैं।

जर्मनी

जर्मनी तो खुद को आर्य मानते ही हैं। लेकिन आश्चर्य की जर्मन में 40 हजार साल पुरानी भगवान नरसिंह की मूर्ति मिली। ये मूर्ति सन 1939 में पाई गई थी। ये मूर्ति इंसानों की तरह दिखने वाले शेर की है। जिसकी लंबाई 29.6 सेंटीमीटर (11.7 सेमी) है। कॉर्बन डेटिंग पद्धति से बताया गया है कि यह लगभग 40 हजार साल पुरानी है। ये मूर्ति होहलंस्टैंन स्टैडल, जर्मन घाटी क्षेत्र में मिली थी। द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ने के बाद गायब हो गई थी। बाद में उसे खोजा गया। ये मूर्ति खंडित अवस्था में मिली थी और 1997-1998 के दौरान कुछ लोगों ने उसे जोड़ा। सन् 2015 में उसे म्यूजियम में रखा गया।

सनातन से सम्बद्ध यजीदी

इस्लामिक आतंकवाद के चलते यजीदी अब खत्म हो रही मनुष्य की विशिष्ट प्रजाति में शामिल हो चुके हैं। यजीदी धर्म भी विश्व की प्राचीनतम धार्मिक परंपराओं में से एक है। इस कुछ इतिहासकार हिन्दू धर्म का ही एक समाज मानते हैं। यजीदियों की गणना के अनुसार अरब में यह परंपरा 6,763 वर्ष पुरानी है अर्थात ईसा के 4,748 वर्ष पूर्व यहूदियों, ईसाइयों और मुसलमानों से पहले से यह परंपरा चली आ रही है। यजीदी मंदिर की इस तस्वीर से यह सिद्ध हो जाएगा कि ये सभी हिन्दू हैं। शोध से पता चलता है कि यजीदियों का यजीद या ईरानी शहर यज्द से कोई लेना-देना नहीं। उनका संबंध फारसी भाषा के 'इजीद' से है जिसके मायने फरिश्ता है। इजीदिस के मायने हैं 'देवता के उपासक' और यजीदी भी खुद को यही कहते हैं। यजीदियों की कई मान्यताएं हिन्दू और ईसाइयत से भी मिलती-जुलती हैं। ईसाइयत के आरंभिक दिनों में मयूर पक्षी को अमरत्व का प्रतीक माना जाता था। बाद में इसे हटा दिया गया। यजीदी का शाब्दिक अर्थ 'ईश्वर के पूजक' होता है। ईश्वर को 'यजदान' कहते हैं। यजीदी अपने ईश्वर को 'यजदान' कहते हैं। यजदान से 7 महान आत्माएं निकलती हैं जिनमें मयूर एंजेल है जिसे मलक ताउस कहा जाता है। मयूर एंजेल को दैवीय इच्छाएं पूरा करने वाला माना जाता है। यजीदी ईश्वर को इतना ऊपर मानते हैं कि उनकी सीधे उपासना नहीं की जाती। उन्हें सृष्टि का रचयिता तो मानते हैं, लेकिन रखवाला नहीं। हिन्दुओं की तरह ही यजीदियों में जल का महत्व है। धार्मिक परंपराओं में जल से अभिषेक किए जाने की परंपरा है। तिलक लगाते हैं और अपने मंदिर में दीपक जलाते हैं। हिन्दू देतता कार्तिकेय जैसे दिखाई देने वाले देवता की पूजा करते हैं। उनके मंदिर और हिन्दुओं के मंदिर समान नजर आते हैं। पुनर्जन्म को मानते हैं। यजीदी अपने ईश्व र की 5 समय प्रार्थना करते हैं। सूर्योदय व सूर्यास्त में सूर्य की ओर मुंह करके प्रार्थना की जाती है। स्वर्ग-नरक की मान्यता भी है। धार्मिक संस्कार कराने वाले विशेषज्ञों की परंपरा है। व्रत, मेले, उत्सव की परंपरा भी है। समाधियां व पूजागृह (मंदिर) भी हैं। इनकी धार्मिक भाषा कुरमांजी है, जो प्राचीन परशियन (ईरान) की शाखा है। पृथ्वी, जल व अग्नि में थूकने को पाप समझते हैं। यजीदी धर्म परिवर्तन नहीं करते। यजीदी के लिए धर्म निकाला सबसे दुर्भाग्यपूर्ण माना जाता है, क्योंकि ऐसा होने पर उसकी आत्मा को मोक्ष नहीं मिलता।

अनादि, अनंत सनातन

सनातन संस्कृति अनादि है। अनंत है। सृष्टि के साथ ही आयी है और रहेगी भी। विश्व चाहे आधुनिक हो या प्राचीन, सनातन ही इसका प्राण है। जब जब सभ्यता सनातनता से भटकेगी, उसे प्रताड़ित होना है । इसका सबसे नवीन उदाहरण विगत दो वर्षों में फैली महामारी है। एक सूक्ष्म विषाणु ने विश्व के सारे विकास और विज्ञान को आइना दिखा दिया है। भारत यह संदेश दुनिया को सदियों से देता आया है। आज भी दे रहा है। महामारी से मुक्ति के सभी साधन इस भारतीय सनातन जीवन संस्कृति से ही वर्तमान विश्व ग्रहण कर रहा है। ऐसे में यह तो प्रमाणित हो चुका है कि मनुष्य के जीवन के लिए सनातन संस्कृति के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प है ही नही। अब दुनिया के कोने कोने में इस सनातन वैदिक संस्कृति की गहरी जड़ें भी मिलनी शुरू हो गयी हैं।

डॉ सतीश द्विवेदी

“प्राचीन भारत में सिंधु नदी का बंदरगाह अरब और भारतीय संस्कृति का मिलन केंद्र था। यहां से जहाज द्वारा बहुत कम समय में इजिप्ट या सऊदी अरब पहुंचा जा सकता था। यदि सड़क मार्ग से जाना हो तो बलूचिस्तान से ईरान, ईरान से इराक, इराक से जॉर्डन और जॉर्डन से इसराइल होते हुई इजिप्ट पहुंचा जा सकता था। यह प्राचीन विश्वय का प्रमुख व्यापारिक और धार्मिक केंद्र था।”

हमारी अतिप्राचीन एवं अनादि सनातन धर्म से प्रेरित होकर एवं इसी पर मूलाधारित बाद में आने वाली कोई भी अन्य धार्मिक व्यवस्था हमारे आसपास भी नहीं ठहरती। यदि अनुभव, श्रेष्ठता एवं उत्पत्ति काल के सन्दर्भ में देखें तो संसार के अन्य उपासना के पंथ या सम्प्रदाय हमारे सनातन की जगह कभी भी नहीं ले सकते। हम सब मिलकर इस बात का गर्व क्यों न करें कि हम उस सनातन वैदिक हिन्दू संस्कृति, उस विशोत्पत्ति सनातनी संस्कृति के मानने वाले हैं जिसने जंगलों में नंगी घूमती दुनिया को

(लेखक प्रख्यात शिक्षाविद एवं उत्तर प्रदेश सरकार में मंत्री हैं।)

सभ्यता सिखायी, समाजिक व्यवस्था सिखायी, जीने का तरीका सिखाया। और सदियों से अनगिनत अत्याचार सहकर भी हमारे पूर्वजों ने इस महान धर्म को नहीं छोड़ा और हम आज भी उस महान परम्परा का एक हिस्सा बने हुए हैं। यह प्राचीनता कितनी गहरी है, इसको समझना आज विश्व समुदाय की आवश्यकता है।

महाभारत काल के प्रमाण

महाभारत में अर्जुन के उत्तर-कुरु तक जाने का उल्लेख है। कुरु वंश के लोगों की एक शाखा उत्तरी ध्रुव के एक क्षेत्र में रहती थी। उन्हें उत्तर कुरु इसलिए कहते हैं, क्योंकि वे हिमालय के उत्तर में रहते थे। महाभारत में उत्तर-कुरु की भौगोलिक स्थिति का जो उल्लेख मिलता है वह रूस और उत्तरी ध्रुव से मिलता-जुलता है। हिमालय के उत्तर में रशिया, तिब्बत, मंगोल, चीन, किर्गिस्तान, कजाकिस्तान आदि आते हैं। अर्जुन के बाद बाद सम्राट ललितादित्य मुक्तापिद और उनके पोते जयदीप के उत्तर कुरु को जीतने का उल्लेख मिलता है।

अर्जुन के अपने उत्तर के अभियान में राजा भगदत्त से हुए युद्ध के संदर्भ में कहा गया है कि चीनियों ने राजा भगदत्त की सहायता की थी। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ सम्पन्न के दौरान चीनी लोग भी उन्हें भेंट देने आए थे।

श्रीकृष्ण और अर्जुन अग्नि यान (अश्वतरी) से समुद्र द्वारा उद्धालक ऋषि को आर्यावर्त लाने के लिए पाताल गए। भीम, नकुल और सहदेव भी विदेश गए थे। अवसर था युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का। यह महान ऋषियों और राजाओं को निमंत्रण देने गए। यह लोग चारों दिशाओं में गए। कृष्ण-अर्जुन का अग्नियान अति आधुनिक मोटर बोट थी। कहते हैं कि कृष्ण और बलराम एक बोट के सहारे ही नदी मार्ग से बहुत कम समय में मथुरा से द्वारिका में पहुंच जाते थे।

महाभारत में यवन

महाभारत में यवनों का अनेका बार उल्लेख हुआ है। संकेत मिलता है कि यवन भारत की पश्चिमी सीमा के अलाव मथुरा के आसपास रहते थे। यवनों ने पुष्यमित्र शुंग के शासन काल में भयंकर आक्रमण किया था। कौरव पांडवों के युद्ध के समय यवनों का उल्लेख कृपाचार्य के सहायकों के रूप में किया गया है। महाभारत काल में यवन, म्लेच्छ और अन्य अनेकानेक अवर वर्ण भी क्षत्रियों के समकक्ष आदर पाते थे। महाभारत काल में विदेशी भाषा के प्रयोग के संकेत भी विद्यमान हैं। कहते हैं कि विदुर लाक्षागृह में होने वाली घटना का संकेत विदेशी भाषा में देते हैं। जरासंध का मित्र कालयवन खुद यवन देश का था। कालयवन ऋषि शेशिरायण और अप्सारा रम्भा का पुत्र था। गर्ग गोत्र के ऋषि शेशिरायण त्रिगत राज्य के कुलगुरु थे। काल जंग नामक एक क्रूर राजा मलीच देश पर राज करता था। उसे कोई संतान न थी जिसके कारण वह परेशान रहता था। उसका मंत्री उसे आनंदगिरि पर्वत के बाबा के पास ले गया। बाबा ने उसे बताया की वह ऋषि शेशिरायण से उनका पुत्र मांग ले। ऋषि शेशिरायण ने बाबा के अनुग्रह पर पुत्र को काल जंग को दे दिया। इस प्रकार कालयवन यवन देश का राजा बना।

नकुल ने हूणों को परास्त किया

महाभारत में उल्लेख मिलता है कि नकुल ने पश्चिम दिशा में जाकर हूणों को परास्त किया था। युद्धिष्ठिर द्वारा राजसूय यज्ञ

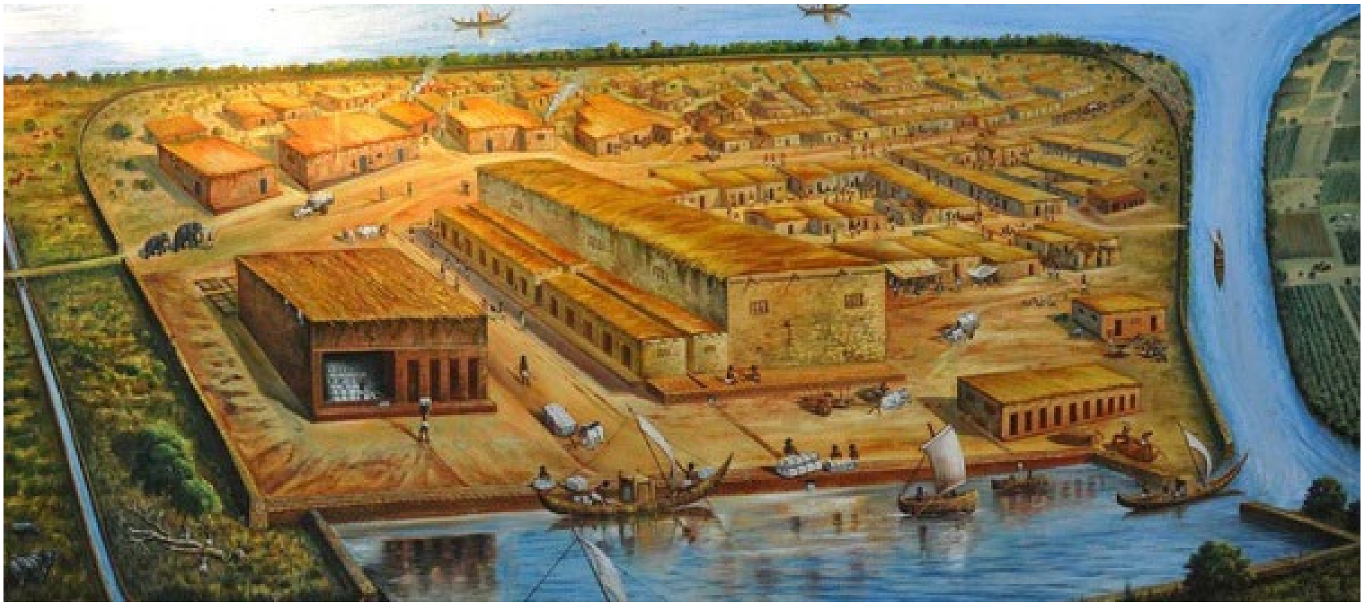

सम्पन्न करने के बाद हूण उन्हें भेंट देने आए थे। उल्लेखनीय है कि हूणों ने सर्वप्रथम स्कन्दगुप्त के शासन काल (455 से 467 ईस्वी) में भारत के भितरी भाग पर आक्रमण करके शासन किया था। हूण भारत की पश्चिामी सीमा पर स्थित थे। इसी प्रकार महाभारत में सहदेव द्वारा दक्षिण भारत में सैन्य अभियान किए जाने के संदर्भ में उल्लेख मिलता है कि सहदेव के दूतों ने वहां स्थित यवनों के नगर को वश में कर लिया था।

शकों की उपस्थिति

महाभारत में शकों का उल्लेख भी मिलता है। शक और शाक्य में फर्क है। शाक्य जाति तो नेपाल और भारत में प्रचीनकाल से निवास करने वाली एक जाति है। नकुल में पश्चिकम दिशा में जाकर शकों को पराजित किया था। शकों ने भी राजसूय यज्ञ समापन पर युधिष्ठिर को भेंट दिया था। महाभारत के शांतिपर्व में शकों का उल्लेख विदेशी जातियों के साथ किया गया है। नकुल ने ही अपने पश्चियमी अभियान में शक के अलावा पह्व को भी पराजित किया था। पह्व मूलतः पार्थिया के निवासी थे।

व्यापार, संसाधन और यातायात

प्राचीनकाल में भारत और रोम के मध्य घनिष्ठ व्यापारिक संबंध था। आरिकामेडु ने सन् 1945 में व्हीलर द्वारा कराए गए उत्खनन के फलस्वरूप रोमन बस्ती का अस्तित्व प्रकाश में आया है। महाभारत में दक्षिण भारत की यवन बस्ती से तात्पर्य आरिकामेडु से प्राप्त रोमन बस्ती ही रही होगी। हालांकि महाभारत में एक अन्य स्थान पर रोमनों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इस उल्लेख के अनुसार रोमनों द्वारा युद्धिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समापन में दौरान भेंट देने की बात कही गई है।

प्राचीन भारत में सिंधु नदी का बंदरगाह अरब और भारतीय संस्कृति का मिलन केंद्र था। यहां से जहाज द्वारा बहुत कम समय में इजिप्ट या सऊदी अरब पहुंचा जा सकता था। यदि सड़क मार्ग से जाना हो तो बलूचिस्तान से ईरान, ईरान से इराक, इराक से जॉर्डन और जॉर्डन से इसराइल होते हुई इजिप्ट पहुंचा जा सकता था। हालांकि इजिप्ट पहुंचने के लिए ईरान से सऊदी अरब और फिर इजिप्ट जाया जा सकता है, लेकिन इसमें समुद्र के दो छोटे-छोटे हिस्सों को पार करना होता है। यहां का शहर इजिप्ट प्राचीन सभ्यताओं और अफ्रीका, अरब, रोमन आदि लोगों का मिलन स्थल है। यह प्राचीन विश्वय का प्रमुख व्यापारिक और धार्मिक केंद्र था। मिस्त्र के भारत से गहरे संबंध रहे हैं। मान्यता है कि यादवों के गजपत, भूपद, अधिपद नाम के 3 भाई मिस्त्र में ही रहते थे। गजपद के अपने भाइयों से झगड़े के चलते उसने मिस्त्र छोड़कर अफगानिस्तान के पास एक गजपद नगर बसाया था। गजपद बहुत शक्तिशाली था।

ऋग्वेद के प्रमाण

ऋग्वेद के अनुसार वरुण देव सागर के सभी मार्गों के ज्ञाता हैं। ऋग्वेद में नौका द्वारा समुद्र पार करने के कई उल्लेख मिलते हैं। एक सौ नाविकों द्वारा बड़े जहाज को खेने का उल्लेख भी मिलता है। ऋग्वेद में सागर मार्ग से व्यापार के साथ-साथ भारत के दोनों महासागरों (पूर्वी तथा पश्चिमी) का उल्लेख है जिन्हें आज बंगाल की खाड़ी तथा अरब सागर कहा जाता है। अथर्ववेद में ऐसी नौकाओं का उल्लेख है जो सुरक्षित, विस्तारित तथा आरामदायक भी थीं।

ऋग्वेद में सात पहियों वाले हवाई जहाज का भी वर्णन है-

सोमा पूषण रजसो विमानं

सप्तचक्रम् रथम् विश्वार्भन्वम्।

इसके अलावा ऋग्वेद संहिता में पनडुब्बी का उल्लेख भी मिलता है-

यास्ते पूषन्नावो अन्तःसमुद्रे
हिरण्मयी रन्तिरिक्षे चरन्ति।
ताभिर्यासि दूतां सूर्यस्यकामेन
कृतश्रव इच्छभानः।।

ऋग्वेद में सरस्वती नदी को 'हिरण्यवर्तनी' (सुवर्ण मार्ग) तथा सिन्धु नदी को 'हिरण्यमयी' (स्वर्णमयी) कहा गया है। सरस्वती क्षेत्र से सुवर्ण धातु निकाला जाता था और उस का निर्यात होता था। इसके अतिरिक्त अन्य वस्तुओं का निर्यात भी होता था। भारत के लोग समुद्र के मार्ग से मिस्र के साथ इराक के माध्यम से व्यापार करते थे। तीसरी शताब्दी में भारतीय मलय देशों (मलाया) तथा हिन्द चीनी देशों को घोड़ों का निर्यात भी समुद्री मार्ग से करते थे।

भारतवासी जहाजों पर चढ़कर जलयुद्ध करते थे, यह ज्ञात वैदिक साहित्य में तुग्र ऋषि के उपाख्यान से, रामायण में कैवर्तों की कथा से तथा लोकसाहित्य में रघु की दिग्विजय से स्पष्ट हो जाती है।भारत में सिंधु, गंगा, सरस्वती और ब्रह्मपुत्र ऐसी नदियां हैं जिस पर पौराणिक काल में नौका, जहाज आदि के चलने का उल्लेख मिलता है। कुछ विद्वानों का मत है कि भारत और शत्तेल अरब की खाड़ी तथा फरात नदी पर बसे प्राचीन खल्द देश के बीच ईसा से 3,000 वर्ष पूर्व जहाजों से आवागमन होता था। भारत के प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में जहाज और समुद्रयात्रा के अनेक उल्लेख है (ऋक् 1. 25. 7, 1. 48. 3, 1. 56. 2, 7. 88. 3-4 इत्यादि)। याज्ञवल्क्य सहिता, मार्कंडेय तथा अन्य पुराणों में भी अनेक स्थलों पर जहाजों तथा समुद्रयात्रा संबंधित कथाएं और वार्ताएं हैं। मनुसंहिता में जहाज के यात्रियों से संबंधित नियमों का वर्णन है। ईसा से 3,000 वर्ष पूर्व का समय महाभारत का काल था।

अमेरिका, पाताल लोक, नाग लोक

अमेरिका का उल्लेख पुराणों में पाताललोक, नागलोक आदि कहकर बताया गया है। इस अम्बरीष भी कहते थे। मेक्सिको को मक्षिका कहा जाता था। कहते हैं कि मेक्सिको के लोग भारतीय वंश के हैं। वे भारतीयों जैसी रोटी थापते हैं, पान, चूना, सुपारी आदि चबाते हैं। नववधू को ससुराल भेजने समय उनकी प्रथाएं, दंतकथाएं, उपदेश आदि भारतीयों जैसे ही होते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के एक ओर मेक्सिको है तो दूसरी ओर कनाडा।

कणाद से कनाडा

इस कनाडा नाम के बारे में कहा जाता है कि यह भारतीय

ऋषि कणाद के नाम पर रखा गया था। यह बात डेरोथी चपलीन नाम के एक लेखक ने अपने ग्रंथ में उद्धत की थी। कनाडा के उत्तर में अलास्का नाम का एक क्षेत्र है। पुराणों अनुसार कुबेर की नगरी अलकापुरी हिमालय के उत्तर में थी। यह अलास्का अलका से ही प्रेरित जान पड़ता है।

अमेरिका में शिव, गणेश, नरसिंह आदि देवताओं की मूर्तियां तथा शिलालेख आदि का पाया जाने इस बात का सबसे बड़ा सबूत है कि प्रचीनकाल में अमेरिका में भारतीय लोगों का निवास था। इसके बारे में विस्तार से वर्णन भिक्षु चमनलाल द्वारा लिखित पुस्तक 'हिन्दू अमेरिका' में चित्रों सहित मिलेगा। दक्षिण अमेरिका में उरुग्वे करने एक क्षेत्र विशेष है जो विष्णु के एक नाम उरुगाव से प्रेरित है और इसी तरह ग्वाटेमाल को गौतमालय का अपभ्रंष माना जाता है। ब्यूनस आयरिश वास्तव में भुवनेश्वर से प्रेरित है। अर्जेंटीना को अर्जुनस्थान का अपभ्रंश माना जाता है। पांडवों का स्थापत्य मय दानव था। विश्व कर्मा के साथ मिलकर इसने द्वारिका के निर्माण में सहयोग दिया था। इसी ने इंद्रप्रस्थ का निर्माण किया था। कहते हैं कि अमेरिका के प्रचीन खंडहर उसी के द्वारा निर्मित हैं। यही माया सभ्यता का जनक माना जाता है। इस सभ्यता का प्राचीन ग्रंथ है पोपोल वूह। पोपोल वूह में सृष्टि उत्पत्ति के पूर्व की जो स्थिति वर्णित है कुछ कुछ ऐसी ही वेदों भी उल्लेखित है। उसी पोपोल वूह ग्रन्थ में अरण्यवासी यानि असुरों से देवों के संघर्ष का वर्णन उसी प्रकार से मिलता है जैसे कि वेदों में मिलता है।

ये तो महज कुछ उदाहरण भर हैं। आज दुनिया मे जहां भी उत्खनन के कार्य हो रहे हैं वहां से प्राचीन सनातन वैदिक संस्कृति के प्रचुर प्रमाण मिल रहे हैं। भगवान शिव की उपस्थिति के प्रमाण तो अखिल विश्व मे प्राप्त हो रहे हैं। ऐसे में भारतीय चिंतन की वसुधैव कुटुम्बकम का उद्घोष स्वयं में सबसे बड़ा प्रमाण है।

भारतबोध का नया समय

प्रो. संजय द्विवेदी

इन दिनों भारतबोध,भारतीयता, राष्ट्रत्व जैसे शब्द चर्चा और बहस के केंद्र में है। ऐसे में यह जरूरी है कि हम भारतबोध पर एक नई दृष्टि से सोचें और जानें कि आखिर भारतबोध क्या है? 'राष्ट्र' सामान्य तौर पर सिर्फ भौगोलिक नहीं बल्कि 'भूगोल-संस्कृति-लोग' के तीन तत्वों से बनने वाली इकाई है। इन तीन तत्वों से बने राष्ट्र में आखिर सबसे महत्वपूर्ण तत्व कौन सा है? जाहिर तौर पर वह 'लोग' ही होगें। इसलिए लोगों की बेहतरी,भलाई, मानवता का स्पंदन ही किसी राष्ट्रीयता का सबसे प्रमुख तत्व होना चाहिए।

> **"हमारे सांस्कृतिक इतिहास की ओर देखें तो आर्यावर्त की सीमाएं कहां से कहां तक विस्तृत हैं, जबकि सच यह है कि इस पूरे भूगोल पर राज्य बहुत से थे, राजा अनेक थे- किंतु हमारा सांस्कृतिक अवचेतन हमें एक राष्ट्र का अनुभव कराता था। एक ऐतिहासिक सत्य यह भी यह है कि हमारा राष्ट्रीयता दरअसल राज्य संचालित नहीं था, वह समाज और बौद्धिक चेतना से संपन्न संतों, ऋषियों द्वारा संचालित थी।"**

(लेखक भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली के महानिदेशक हैं)

जब हम लोगों की बात करते हैं तो भौगोलिक इकाईयां टूटती हैं। अध्यात्म के नजरिए से पूरी दुनिया के मनुष्य एक हैं। सभी संत, आध्यात्मिक नेता और मनोवैज्ञानिक भी यह मानने हैं कि पूरी दुनिया पर मनुष्यता एक खास भावबोध से बंधी हुयी है। यही वैश्विक अचेतन (कलेक्टिव अनकांशेसनेस) हम-सबके एक होने का कारण है। स्वामी विवेकानंद इसी बात को कहते थे कि इस अर्थ में भारत एक जड़ भौगोलिक इकाई नहीं है। बल्कि वह एक चेतन भौगोलिक इकाई है, जो सीमाओं और सैन्य बलों पर ही केंद्रित नहीं है। भारतीय राष्ट्रवाद मनुष्य के विस्तार व विकास पर केंद्रित है। जिसे भारत ने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' कहकर संबोधित किया। यह 'वसुधैव कुटुम्बकम्' राजनीतिक सत्ता का उच्चार नहीं है। उपनिषद् का उच्चार है। सारी दुनिया के लोग एक परिवार, एक कुटुम्ब के हैं, इसे समझना ही दरअसल भारतबोध को समझना है। यह भाव ही मनुष्य की सांस्कृतिक एकता के विस्तार का प्रतीक है। हमारे सांस्कृतिक मूल्य, मानवतावादी सांस्कृतिक मूल्यों पर केंद्रित हैं। हमारी भारतीय अवधारणा में राज्य निर्मित भौगोलिक-प्रशासनिक इकाईयां प्रमुख स्थान नहीं रखतीं बल्कि हमारी चेतना, संस्कृति, मूल्य आधारित जीवन और परंपराएं ही यहां हमें राष्ट्र बनाती हैं। हमारे सांस्कृतिक इतिहास की ओर देखें तो आर्यावर्त की सीमाएं कहां से कहां तक विस्तृत हैं, जबकि सच यह है कि इस पूरे भूगोल पर राज्य बहुत से थे, राजा अनेक थे- किंतु हमारा सांस्कृतिक अवचेतन हमें एक राष्ट्र का अनुभव कराता था। एक ऐतिहासिक सत्य यह भी यह है कि हमारा राष्ट्रीयता दरअसल राज्य संचालित नहीं था, वह समाज और बौद्धिक चेतना से संपन्न संतों, ऋषियों द्वारा संचालित थी। एक विद्वान कहते हैं राजा राज्य बनाते हैं, राष्ट्र ऋषि बनाते हैं। वही भारतबोध इस व्यापक भूगोल की चेतना में समाया हुआ था। यहां का ज्ञान विस्तार जिस तरह चारों दिशाओं में हुआ,वह बात हैरत में डालती है।

आप देखें तो भगवान बुद्ध पूरी दुनिया में अपने संदेश को यूं ही नहीं फैला पाए, बल्कि उस ज्ञान में एक ऐसा नवाचार,नवचेतन था, जिसे दुनिया ने स्वतः आगे बढकर ग्रहण किया। भारत कई मायनों में अध्यात्म और चेतना की भूमि है। सच कहें तो दुनिया की तमाम स्थितियों से भारत एक अलग स्थिति इसलिए पाता है, क्योंकि यह भूमि संतों के लिए, ज्ञानियों के लिए उर्वर भूमि है। दुनिया के तमाम विचारों की सांस्कृतिक चेतना जड़वादी है, जबकि भारत की चेतना जैविक है। इसलिए भारत मरता नहीं है, क्योंकि वह जड़वादी

और हठवादी नहीं है। यहां का मनुष्य सांस्कृतिक एकता के लिए तो खड़ा होता है पर विचारों में जड़ता आते ही उससे अलग हो जाता है। हमारा ईश्वर आंतरिक उन्नयन और पाप क्षय के लिए काम करता है। हमारे संत भी आध्यात्मिक उन्नयन और पापों के क्षय के लिए काम करते हैं। मनुष्य की चेतना का आत्मिक विस्तार ही हमारी राष्ट्रीयता का लक्ष्य है। इसलिए यह सिर्फ एक खास भूगोल, एक खास विचारधारा और पूजा पध्दति में बंधे लोगों के उद्धार के लिए नहीं, बल्कि समूची मानवता की मुक्ति के काम करने वाला विचार है। यहां मानव की मुक्ति ही उसका लक्ष्य है। यह राष्ट्रीयता सैन्यबल और व्यापार बल से चालित नहीं है, बल्कि यह चेतना के विस्तार, उसके व्यापक भावबोध और मनुष्य मात्र की मुक्ति के विचार से अनुप्राणित है।

भारतीय संदर्भ में भारतबोध को समझना वास्तव में मानवतावाद के व्यापक परिप्रेक्ष्य को समझना है। यह विचार कहता है- 'संतों को सीकरी से क्या काम' और फिर कहता है 'कोई नृप होय हमें क्या हानि'। इस मायने में हम राज या राज्य पर निर्भर रहने वाले समाज नहीं थे। राजा या राज्य एक व्यवस्था थी, किंतु जीवन मुक्त था-मूल्यों पर आधारित था। पूरी सांस्कृतिक परंपरा में समाज ज्यादा ताकतवर था और स्वाभिमान के साथ उदार मानवतावाद और एकात्म मानवदर्शन पर आधारित जीवन जीता था। वह चीजों को खंड-खंड करके देखने का अभ्यासी नहीं था। इसलिए इस राष्ट्रीयता में जो समाज बना, वह राजा केंद्रित नहीं, संस्कृति केंद्रित समाज था। जिसे अपने होने-जीने की शर्तें पता थीं, उसे उसके कर्तव्य ज्ञात थे। उसे राज्य की सीमाएं भी पता थीं और अपनी मुक्ति के मार्ग भी पता थे। इस समाज में गुणता की स्पर्धा थी- इसलिए वह एक सुखी और संपन्न समाज था। इस समाज में भी बाजार था, किंतु समाज- बाजार के मूल्यों पर आधारित नहीं था। आनंद की सरिता पूरे समाज में बहती थी और आध्यात्मिकता के मूल्य जीवन में रसपगे थे। भारतीय समाज जीवन अपनी सहिष्णुता के नाते समरसता के मूल्यों का पोषक है। इसीलिए तमाम धाराएं,विचार,वाद और पंथ इस देश की हवा-मिट्टी में आए और अपना पुर्नअविष्कार किया, नया रूप लिया और एकमेक हो गए। भारतीयता हमारे राष्ट्र का अनिवार्य तत्व है। भारतीयता के माने ही है स्वीकार। दूसरों को स्वीकार करना और उन्हें अपनों सा प्यार देना। यह राष्ट्रवाद विविधता को साधने वाला, बहुलता को आदर देने वाला और समाज को सुख देने वाला है। इसी नाते भारत का विचार आक्रामकता का, आक्रामण का, हिंसा या अधिनायकवाद का विचार नहीं है। यह श्रेष्ठता को आदर देने वाली,विद्वानों और त्यागी जनों को पूजने वाली संस्कृति है। अपने लोकतत्वों को आदर देना ही यहां भारतबोध है। इसलिए यहां भूगोल का विस्तार नहीं, मनों और दिलों को जीतने की संस्कृति जगह पाती है।

यहां शांति है, सुख है, आनंद है और वैभव है। यह देकर, छोड़कर और त्यागकर मुक्त होती है। समेटना यहां ज्ञान को है। संपत्ति, जमीन और वैभव को नहीं। इसलिए फकीरी यहां आदर पाती है और सत्ताएं लांछन पाती हैं। इसलिए यहां लोकसत्ता का भी मानवतावादी होना जरूरी है। यहां सत्ता विचारों से, कार्यों से और आचरण से लोकमानस का विचार करती है तो ही सम्मानित होती है। वैसे भी भारतीय समाज एक सत्ता निरपेक्ष समाज है। वह सत्ताओं की परवाह न करने वाला स्वाभिमानी समाज है। इसलिए उसने जीवन की एक अलग शैली विकसित की है, जो उसके भारतबोध ने उसे दी है। यही स्वाभिमान एक नागरिक का भी है और राष्ट्र का भी। इसलिए वह अपने अध्यात्म के पास जाता है, अपने लोक के पास जाता है और सत्ता या राज्य के चमकीले स्वप्न उसे रास नहीं आते। इसी राष्ट्र तत्व को खोजते हुए राजपुत्र सत्ता को छोड़कर वनों, जंगलों में जाते रहे हैं, ज्ञान की खोज में,सत्य की खोज में, लोक के साथ सातत्य और संवाद के लिए। राम हों, कृष्ण हों, शिव हों, बुद्ध हों, महावीर हों- सब राजपुत्र हैं, संप्रुभ हैं और सब राज के साथ समाज को भी साधते हैं और अपनी सार्थकता साबित करते हैं। इसलिए हमारी राष्ट्रीयता की अलग कथा है, उसे पश्चिमी पैमानों से नापना गलत होगा। आज इस वक्त जब भारतीयता की अनाप-शनाप व्याख्या हो रही है, हमें ठहरकर सोचना होगा कि क्या सच में हममें अपने राष्ट्र की थोड़ी भी समझ बची है?

आलेख

मातृ शक्ति के सनातन सत्य को स्वीकार करता विश्व

सनातन संस्कृति विश्व की धुरी है। अब आधुनिक विश्व भी इसी से शक्ति प्राप्त कर रहा है। सनातन के मूल में मातृ सत्ता है। वर्ष में चार बार मातृशक्ति की आराधना कर सनातन संस्कृति में जीवन के विकास की अवधारणा है। केंद्र में मातृशक्ति है। जीवन मे यही शक्ति जननी के रूप में स्थापित है। वेदों में 'मां' को 'अंबा','अम्बिका','दुर्गा','देवी','सरस्वती','शक्ति','ज्योति','पृथ्वी' आदि नामों से संबोधित किया गया है। 'मां' को 'माता', 'मात', 'मातृ', 'अम्मा', 'अम्मी', 'जननी', 'जन्मदात्री', 'जीवनदायिनी', 'जनयत्री', 'धात्री', 'प्रसू' आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है।

डॉ अर्चना तिवारी

> 'मदर्स डे' मनाने का मूल कारण समस्त माओं को सम्मान देना और एक शिशु के उत्थान में उसकी महान् भूमिका को सलाम करना है। इस को आधिकारिक बनाने का निर्णय पूर्व अमरीकी राष्ट्रपति वूडरो विलसन ने 8 मई, 1914 को लिया। 8 मई, 1914 में अन्ना की कठिन मेहनत के बाद तत्कालीन अमरीकी राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने मई के दूसरे रविवार को मदर्स डे मनाने और माँ के सम्मान में एक दिन के अवकाश की सार्वजनिक घोषणा की।

(लेखिका प्रख्यात शिक्षाविद, राष्ट्र सेविका एवं संस्कृति पर्व की कार्यकारी संपादक हैं।)

आधुनिक विश्व के दो सनातन महाकाव्य हैं रामायण और महाभारत। इन दोनों महाकाव्यों के नायक स्वयं नारायण ही हैं, लेकिन दोनों ही ग्रंथों की नीति स्थापना में केवल स्त्री तत्व ही विद्यमान है। ईश्वर की ईश्वरीय सत्ता की स्थापना और आसुरी शक्तियों पर ईश्वरीय शक्ति या धर्म के विजय से इन दोनो ही महाकाव्यों का अंत नही होता। दोनो महाकाव्यों का अंत होता है स्त्री के सतीत्व या उस नारीत्व से जो सनातन में महाशक्ति के रूप में स्थापित है। यही सनातन का महाविज्ञान है जिस दिशा में चलते हुए आधुनिक नवीन विज्ञान अभी केवल ऊर्जा के एक पक्ष तक पहुच सका है, जिसमे ऊर्जा के कभी उत्पन्न होने या नष्ट होने को नकारते हुए वह इतना ही जान सका है कि सृष्टि या ब्रह्मांड की ऊर्जा न तो उत्पन्न की जा सकती है और न ही नष्ट की जा सकती है। ऊर्जा का यही रूप सनातन की शक्ति है जो मातृ शक्ति के रूप में स्थापित है। इसीलिए पूरी पृथ्वी को सनातन संस्कृति ने मां के रूप में देखा और पाया है। स्वाभाविक है कि पृथ्वी की कोख से जो भी जन्म लिया या ले रहा या लेगा, संतान तो इसी पृथ्वी की कहलायेगा। इसीलिए सनातन उद्घोष वसुधैव कुटुम्बकम की स्थापना देता है। मातृ शक्ति के इस सनातन सत्य को आज विश्व पवित्र उत्सव के रूप में तेजी से अपना रहा है। वैश्विक स्वरूप में अब मातृ दिवस का चलन सनातन से ही जुड़ा है।

श्रीमदरामायण में श्रीराम अपने श्रीमुख से जीवनदात्री माता और जन्मभूमि को स्वर्ग से भी बढ़कर मानते हैं। वे कहते हैं-

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गदपि गरीयसी।'

अर्थात, जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है। महाभारत में जब यक्ष धर्मराज युधिष्ठर से सवाल करते हैं कि 'भूमि से भारी कौन?' तब युधिष्ठर जवाब देते हैं-

'माता गुरुतरा भूमेरू।'

अर्थात, माता इस भूमि से कहीं अधिक भारी होती हैं। इसके साथ ही महाभारत महाकाव्य के रचियता महर्षि वेदव्यास ने 'मां' के बारे में लिखा है-

'नास्ति मातृसमा छाया, नास्ति मातृसमा गतिः।
नास्ति मातृसमं त्राण, नास्ति मातृसमा प्रिया।।'

अर्थात, माता के समान कोई छाया नहीं है, माता के समान कोई सहारा नहीं है। माता के समान कोई रक्षक नहीं है और माता के समान कोई प्रिय चीज नहीं है।

तैतरीय उपनिषद में 'मां' के बारे में इस प्रकार उल्लेख मिलता है- **'मातृ देवो भवः।'**

अर्थात, माता देवताओं से भी बढ़कर होती है। 'शतपथ ब्राह्मण' की सूक्ति कुछ इस प्रकार है-

'अथ शिक्षा प्रवक्ष्यामः
मातृमान् पितृमानाचार्यवान पुरूषो वेदः।'

अर्थात, जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य हो तो तभी मनुष्य ज्ञानवान होगा। 'मां' के गुणों का उल्लेख करते हुए आगे कहा गया है-

'प्रशस्ता धार्मिकी विदुषी माता विद्यते यस्य स मातृमान।'

अर्थात, धन्य वह माता है जो गर्भावान से लेकर, जब तक पूरी विद्या न हो, तब तक सुशीलता का उपदेश करे।

हितोपदेश में लिखा है-

आपदामापन्तीनां हितोऽप्यायाति हेतुताम् ।
मातृजङ्घा हि वत्सस्य स्तम्भीभवति बन्धने ॥

जब विपत्तियां आने को होती हैं, तो हितकारी भी उनमें कारण बन जाता है। बछड़े को बांधने में मां की जांघ ही खम्भे का काम करती है।

स्कन्द पुराण कहता है-

नास्ति मातृसमा छाया नास्ति मातृसमा गतिः।
नास्ति मातृसमं त्राण, नास्ति मातृसमा प्रिया।।'

महर्षि वेदव्यास कहते हैं- माता के समान कोई छाया नहीं, कोई आश्रय नहीं, कोई सुरक्षा नहीं। माता के समान इस दुनिया में कोई जीवनदाता नहीं।

मातृ सत्ता की आराधना और इसका इतिहास सदियों पुराना एवं प्राचीन है। यह सृष्टि के साथ ही अस्तित्व पा रहा है। यूनान में बसंत ऋतु के आगमन पर परमेश्वर की माँ को सम्मानित करने के लिए यह दिवस मनाया जाता था। 16वीं सदी में इंग्लैण्ड का ईसाई समुदाय ईशु की माँ मदर मेरी को सम्मानित करने के लिए यह त्योहार मनाने लगा। 'मदर्स डे' मनाने का मूल कारण समस्त माओं को सम्मान देना और एक शिशु के उत्थान में उसकी महान् भूमिका को सलाम करना है। इस को आधिकारिक बनाने का निर्णय पूर्व अमरीकी राष्ट्रपति वूडरो विलसन ने 8 मई, 1914 को लिया। 8 मई, 1914 में अन्ना की कठिन मेहनत के बाद तत्कालीन अमरीकी राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने मई के दूसरे रविवार को मदर्स डे मनाने और माँ के सम्मान में एक दिन के अवकाश की सार्वजनिक घोषणा की। वे समझ रहे थे कि सम्मान, श्रद्धा के साथ माताओं का सशक्तीकरण होना चाहिए, जिससे मातृत्व शक्ति के प्रभाव से युद्धों की विभीषिका रुके। तब से हर वर्ष मई के दूसरे रविवार को मदर्स डे मनाया जाता है। मदर्स डे की शुरुआत अमेरिका से हुई। वहाँ एक कवयित्री और लेखिका जूलिया वार्ड होव ने 1870 में 10 मई को माँ के नाम समर्पित करते हुए कई रचनाएँ लिखीं। वे मानती थीं कि महिलाओं की सामाजिक ज़िम्मेदारी व्यापक होनी चाहिए। अमेरिका में मातृ दिवस (मदर्स डे) पर राष्ट्रीय अवकाश होता है। अलग-अलग देशों में मदर्स डे अलग अलग तारीख पर मनाया जाता है।

आधुनिक विश्व मे तलाश करने पर

मातृ दिवस के दो प्रमुख स्वरूप सामने आते हैं। ये है, लेंट में मदरिंग सन्डे की ब्रिटिश परंपरा से चौथे रविवार का छोटा हिस्सा और मई के दूसरे सन्डे को सबसे बड़ा हिस्सा। जैसा कि अमेरिकी अवकाश अन्य देशों और संस्कृतियों के द्वारा अपनाया गया था, इसलिए पहले से ही मातृत्व सम्मान का जश्न मनाने के लिए तारीख बदली गई, मदरिंग सन्डे या यीशु के ग्रीस के मंदिर में परम्परानिष्ठ उत्सव के रूप में मनाया जाता हैं। कुछ देशों में बहुसंख्यक धर्मों के महत्त्वपूर्ण तिथियों की महत्ता को सम्मानित करने के लिए तारीख बदली गयी हैं, जैसे कि कैथोलिक देशों में वर्जिन मेरी डे अथवा इस्लामी देशों में पैगंबर मुहम्मद की बेटी के जन्मदिन के मामले में हुआ। अन्य देशों ने इन्हें ऐतिहासिक तारीखों में बदल दिया, जैसे बोलीविया ने उस खास युद्ध की तारीख का उपयोग किया जिसमें महिलाओं ने हिस्सा लिया था।

मातृसत्ता की वैश्विक स्वीकारोक्ति

अधिकांश देशों में, मातृ दिवस हाल ही में पालन की गयी छुट्टियों से व्युत्पन्न है जो उत्तरी अमेरिका और यूरोप में विकसित हुई है। जब यह अन्य देशों और संस्कृतियों के

द्वारा अपनाया गया था तब इसे दूसरा अर्थ दिया गया, जो अलग घटनाओं (धार्मिक, ऐतिहासिक या पौराणिक) से जुड़े थे और अलग-अलग तारीख या तारीखों पर मनाये जाते थे। कुछ देशों में पहले से ही मातृत्व का सम्मान करने के लिए समारोह था और उन्होंने समारोह का पालन करने के लिए अपनी स्वयं की मां को गुलनार फूल और अन्य उपहार देने जैसी कई बाहरी विशेषताएं अमेरिकन छुट्टियों से ली गयीं। विभिन्न देशों में इस समारोह को मनाने का अपना-अपना तौर-तरीका हैं। कुछ देशों में अगर मातृत्व दिवस के उपलक्ष्य पर अपनी मां को सम्मानित नहीं किया गया तो यह अपराध माना जाता हैं। कुछ देशों में, यह एक छोटे से प्रसिद्ध त्योहार के रूप में मनाया जाता हैं, जो अप्रवासियों या मीडिया के अनुसार विदेशी संस्कृति (वैसे ही जैसे कि ब्रिटेन और अमेरिका में दिवाली का त्यौहार) की देन हैं।

कैथोलिक पंथ में यह छुट्टी वर्जिन मेरी के श्रद्धांजली देने की प्रथा के साथ जुड़ा हुआ है। एक परंपरा में, इसे 'माता तीर्थ औंशी' या 'मदर पिल्ग्रिमेज फोर्टनैट' कहा जाता हैं और यह हिंदू जनसंख्या वाले देशों, विशेष रूप से नेपाल में, मनाया जाता हैं। कई अफ्रीकी देशों ने एक ही तरह का मातृ दिवस मनाने का तरीका ब्रिटिश परंपरा से अपनाया हैं, हालांकि मातृ दिवस मनाने के कई समारोह और घटनाएं जो अफ्रीका के यूरोपीय शक्तियों द्वारा उपनिवेशित होने से पहले कई विभिन्न संस्कृतियों के अंतर्गत अफ्रीकन महाद्वीप में मनाया जाता था।

बोलीविया

बोलीविया में, मातृत्व दिवस 27 मई को मनाया जाता हैं। इसे कोरोनिल्ला युद्ध को स्मरण करने के लिए 8 नवम्बर 1927 को कानून पारित किया गया। यह युद्ध 27 मई 1812 को उस जगह हुआ था जो अब कोचाबाम्बा का शहर कहलाता है। इस लड़ाई में, उन महिलाओं का स्पेनिश सेना द्वारा सरेआम कत्ल कर दिया गया जो देश की आजादी के लिए लड़ रही थी।

चीन

चीन में, मातृ दिवस अधिक लोकप्रिय होता जा रहा है। चीन में इस दिन उपहार के रूप में गुलनार का फूल, जो बहुत लोकप्रिय हैं सबसे अधिक बिकते हैं। यह

दिन गरीब माताओं की मदद के लिए 1997 में निर्धारित किया गया था। खासतौर पर लोगों को उन गरीब माताओं की याद दिलाने के लिए जो ग्रामीण क्षेत्रों, जैसे कि पश्चिम चीन में रहती थीं। पीपुल्स डेली जो चीन के कम्युनिस्ट पार्टी की पत्रिका हैं, के एक लेख में कहा गया था कि संयुक्त राष्ट्र में इस दिन का प्रादुर्भाव होने के बावजूद, चीन के लोग इस छुट्टी को बिना किसी

हिचकिचाहट के मनाते हैं क्योंकि ये परम्परागत नीतियों, बुजुर्गों के प्रति सम्मान और संतानों का माता-पिता के प्रति धर्मनिष्ठा, के रूपरेखा के अंतर्गत आते हैं। हाल के कुछ सालों में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य ली हंकिऊ ने मातृ दिवस को मेंग मु, जो मेंग जी की मां थीं, की याद में कानूनी मान्यता देने के लिए हिमायत की और 100 कन्फ्रुसियन विद्वान और नैतिकता के प्रवक्ताओं की मदद से गैर सरकारी संगठन बनाया जिसका नाम चाइनिज मदर फेस्टिवल प्रोमोशन सोसाइटी है। उन्होंने पश्चिमी उपहार गुलनार के बदले सफ़ेद लिली देने के लिए कहा जो प्राचीन समय में चीनी महिलाओं द्वारा तब लगाया जाता था जब उनके बच्चे अपना घर छोड़कर जाते थे। सिर्फ कुछ छोटे शहरों के अलावा, यह एक अनौपचारिक त्यौहार रह गया है।

ग्रीस

ग्रीस में मातृ दिवस प्रस्तुति मंदिर में यीशु के रूप में पूर्वी रूढ़िवादी द्वारा मनाया जाता था। चूंकि थियोटोकोस (परमेश्वर की मां), जो मसीह को यरूशलेम के मंदिर तक लाने के कारण प्रमुख रूप से इस उत्सव से संलग्न हैं इसलिए यह दावत माताओं के साथ जुड़ी है।

ईरान

मुहम्मद की बेटी फातिमा का सालगिरह 20 जुमादा अल-ठानी को मनाया जाता है। यह ईरानी क्रांति के बाद बदल दिया गया था, इसका कारण नारीवादी आंदोलनों के सिद्धांतों को हटा

कर पुराने पारिवारिक आदर्शों के लिए आदर्श प्रतिरूप को बढ़ावा देना था। यह पहले ईरानी कैलेंडर में शाह युग के दौरान 25 हज़ार था।

जापान

प्रारम्भ में मातृ दिवस जापान में शोवा अवधि के दौरान महारानी कोजुन (सम्राट अकिहितो की मां) के जन्मदिन के रूप में मनाया जाता था। आजकल यह एक विपणन छुट्टी है जिसमें लोग गुलनार के फूल और गुलाब उपहार के रूप में देते हैं।

मेक्सिको

अलवारो ओब्रेगोन की सरकार ने एक्सेलसियर अख़बार के साथ मिलकर 1922 में यह छुट्टी अमेरिका से अपनाई जिसके लिए उस साल जबरदस्त संवर्धन अभियान चलाया गया। रूढ़िवादी सरकार ने इस छुट्टी को माताओं को अपने परिवार में अधिक रूढ़िवादी भूमिका निभाने के लिए इस्तेमाल किया था जिसकी समाजवादियों ने आलोचना करते हुए कहा था कि ये औरतों की एक असत्य छवि को बदावा देते हैं जिसके अनुसार औरत प्रजनन मशीन से ज्यादा कुछ नहीं हैं। लाज़रो कार्देनस की सरकार ने सन्न 1930 के मध्य में मातृ दिवस को 'देशभक्ति का त्यौहार' के रूप में बढ़ावा दिया। कार्देनस सरकार ने इस छुट्टी का उपयोग विभिन्न प्रयासों के लिए एक साधन के रूप में यह सोचते हुए किया कि परिवार का राष्ट्र के विकास में बहुत योगदान होता हैं और मेक्सिकन लोगों में अपनी मां के प्रति वफादारी का लाभ उठाते हुए चर्च और कैथोलिक प्रथाओं के प्रभावों को कम करते हुए मेंक्सिकन महिलाओं में नई नैतिकता का सूत्रपात किया। सरकार ने स्कूलों में छुट्टी को प्रायोजित किया। हालांकि, नाटकशाला के नाटकों ने सरकार के इन सख्त निर्देशों को नजर अंदाज कर दिया और इस प्रकार के नाटक धार्मिक प्रतीकों और विषयों से भर गए और सरकार की अनेक चेष्टाओं के बावजूद ये 'राष्ट्रीय समारोह' 'धार्मिक त्योहार' बन गए।

सोलेदाद ओरोज्को गार्सिया, राष्ट्रपति मैनुअल एविला कामाचो की पत्नी ने, इस छुट्टी को सन् 1940 के दशक के दौरान इसे एक महत्वपूर्ण राज्य प्रायोजित समारोह बनाने में बढ़ावा दिया। 1942 का उत्सव एक पूरे हफ्ते तक चला, जिसमें यह घोषणा की गयी कि सभी महिलाएं पव्नेद सिलाई मशीनों को मोंटे दे पिएदाद से बिना मूल्य पुनः प्राप्त कर सकती हैं।

कैथोलिक राष्ट्रीय स्नार्चिस्ट संघ (UNS) ने 1941 के आसपास की छुट्टियों पर ओरोज्कोस की तरक्की के लिए ध्यान देना शुरू कर दिया था। मैक्सिकन क्रांति (आजकल PRI) के सदस्यों जिनकी दुकानें थीं, उनका रिवाज था कि विनम्र वर्ग की महिलाएं मात् दिवस पर उनकी दुकानों पर जाकर कोई भी उपहार मुफ्त में लेकर अपने घर आकर परिवार वालों को दे सकती हैं। स्नार्चिस्ट्स इस बात पर चिंतित थे कि यह दोनों भौतिकवाद और निम्न वर्ग के आलस्य को बढ़ावा देगा और बदले में देश के पद्धतिबद्ध सामाजिक समस्याओं को सुदृढ बना देगा। आजकल हम देखते हैं कि वह छुट्टी की प्रथा बहुत रूढ़िवादी बन गयी है, 1940 का UNS नज़र रखे था इस छुट्टी के आधुनिकीकरण पर जो उस समय व्यापक बहस का एक भाग था। यह आर्थिक आधुनिकीकरण अमेरिकी आदर्श द्वारा प्रेरित किया गया था तथा राज्य ने इसे प्रायोजित किया था और सच्चाई यह थी कि ये छुट्टी मूलतः अमेरिका से आयात की गयी थी, जिसका एकमात्र सबूत था मैक्सिकन समाज पर कैपिटलाइज़ेशन और भौतिकवाद थोपने का एक प्रयास।

इसके अलावा, UNS और लियोन नगर के पादरी ने सरकारी कार्यों में यह देखा कि वे छुट्टी को किसी लौकिक-कार्य में लगा कर समाज में महिलाओं की सक्रिय भूमिका को बढ़ावा देने के साथ, पुरुषों को दीर्घकालिक आत्मिक रूप से कमजोर बना दिया जब महिलाओं ने अपनी पारंपरिक भूमिका को परित्यक्त कर दिया। उन्होंने इन छुट्टियों को वेर्जिन मेरी पंथ के लौकिक कार्य के रूप में भी अजमाना चाहा, कई छुट्टियों को देक्रिस्तानिज करने के लिए अंदरूनी एक बड़ा प्रयास चल रहा था, जिस पर उन्होंने बड़े पैमाने पर रोक लगाने की कोशिश की और धार्मिक महिलाओं से राज्य के कार्यक्रम में उनकी सहायता करने तथा उन्हें 'देपेग्निज' करने का प्रयास किया। उसी समय 1942 में सोलेदाद का छुट्टी का सबसे बड़े उत्सव के रूप में, पादरियों ने

लियोन में वर्जिन मेरी का 210वां अनुष्टान समारोह एक बड़े परेड के साथ आयोजित किया। यहां विद्वानों के विचारो में मेल है कि मैक्सिकन सरकार ने 1940 के दशक के दौरान क्रांति को त्याग दिया, जिसमें मातृ दिवस को प्रभावित करना भी शामिल था। आजकल मैक्सिको में मातृ दिवस और वर्जिन मेरी दोनों ही छुट्टी का एक उत्सव हैं।

नेपाल

'माता तीर्थ औंशी', जिसका अनुवाद है 'मदर पिल्ग्रिमेज फोर्टनाईट' जो बैशाख के महीने के कृष्ण पक्ष में पड़ता हैं। यह त्यौहार अमावस्या के दिन होता है, इसलिए इसे 'माता तीर्थ औंशी' कहते हैं। यह शब्द 'माता' अर्थात् मां और 'तीर्थ' अर्थात् तीर्थयात्रा शब्द से बना हैं। यह त्यौहार जीवित और स्वर्गीय माताओं के स्मरणोत्सव और सम्मान में मनाया जाता है, जिसमें जीवित माताओं को उपहार दिया जाता हैं तथा स्वर्गीय माताओं का स्मरण किया जाता हैं। नेपाल की परंपरा में माता तीर्थ की तीर्थयात्रा पर जाना प्रचलित हैं जो काठमांडू घाटी के माता तीर्थ ग्राम विकास समिति की परिधि के पूर्व में स्थित हैं।

इस तीर्थ यात्रा के संबंध में एक किंवदंती हैं। प्राचीन समय में भगवान श्री कृष्ण की मां देवकी प्राकृतिक दृश्य देखने के लिए घर से बाहर निकल गयी। उन्होंने कई स्थानों का दौरा किया और घर लौटने में बहुत देर कर दी। भगवान कृष्ण अपनी मां के न लौटने पर दुखी हो गए। वे अपनी मां की तलाश में कई स्थानों पर घूमते रहे परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। अंत में, जब वह 'माता तीर्थ कुंड' पहुंचे तो उन्होंने देखा कि उनकी मां तालाब के फुहार में नहा रही हैं। भगवान कृष्ण अपनी मां को देख कर बहुत खुश हुए और अपनी समस्त शोकपूर्ण घटना जो उनकी माता की अनुपस्थिति में हुई थी उनके आगे कहने लगे। मां देवकी ने कृष्ण भगवान से कहा कि 'ओह !बेटा कृष्णा फिर तो इस स्थान को बच्चों की उनकी स्वर्गीय माताओं से मिलने का पवित्र स्थल ही रहने दिया जाये'.तब से यह किंवदंती है कि यह स्थान एक पवित्र तीर्थयात्रा बन गया हैं जहां श्रद्धालु एवं भक्तगण अपनी स्वर्गीय माताओं को श्रद्धा अर्पण करने आते हैं। साथ ही यह भी किंवदंती हैं कि एक भक्त ने अपनी मां की छवि को तालाब में देखा और उसके अंदर गिर कर उसकी मृत्यु हो गई। आज भी वहां एक छोटे से तालाब को चरों तरफ से लोहे की सिकल से बांध दिया गया हैं। पूजा करने के पश्चात तीर्थयात्री वहां पूरे दिन गाने-बजाने का संपूर्ण आनद उठाते हैं।

थाईलैंड

थाईलैंड में मातृत्व दिवस थाइलैंड की रानी के जन्मदिन पर मनाया जाता है।

रोमानिया

रोमानिया में ये दो अलग छुट्टियों, मातृ दिवस और महिला दिवस के रूप में मनाया जाता है।

यूनाइटेड किंगडम और आयरलैंड

यूनाइटेड किंगडम और आयरलैंड में, मदरिंग सन्डे लेंट के चौथे रविवार को पड़ता है, इस्टर सन्डे के ठीक तीन सप्ताह पहले । ऐसा माना जाता है कि इसका प्रादुर्भाव 16वीं सदी में ईसाइयों द्वारा प्रत्येक साल अपनी मां के गिरिजाघर में जाने से हुआ हैं, जिसका मतलब है कि अधिकतर माताएं अपनी संतानों से इस दिन मिल सकेंगी।अधिकतर इतिहासकार यह मानते हैं कि युवा नौसिखिया और युवतियां सप्ताह के अंत में अपने स्वामी की गुलामी के बंधन से मुक्त हो कर अपने परिजनों से मिल सकते हैं। धर्मनिरपेक्षता के फलस्वरूप, उचित हैं कि मां के प्रति श्रद्धा अर्पण किया जाये. हालांकि यह अभी भी ऐतिहासिक अर्थों में कुछ चर्चों द्वारा अभिमुल्यन हुआ हैं, पर मदर मेरी जो यीशु मसीह की मां हैं और साथ में परंपरागत संकल्पना 'मदर चर्च' को ध्यान में रखते हुए मान्यता प्राप्त हैं। मदरिंग सन्डे जल्द से जल्द 1 मार्च (उस साल जब ईस्टर दिवस 22 मार्च को पड़ता है) या देर हुई तो 4 अप्रैल को (जब ईस्टर दिवस 25 अप्रैल को पड़ता है) तब मनाया जाता हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका

संयुक्त राज्य अमेरिका, भारत और कनाडा मई के दूसरे रविवार को मातृ दिवस मनाते हैं।

वियतनाम

वियतनाम में मातृ दिवस को ले वू-लैन कहा जाता है और ये चंद्रनामा के सातवें महीने के पन्द्रहवें दिन मनाया जाता हैं। जो लोग अपनी मां के साथ रह रहे हैं उन्हें शुक्रगुजार होना चाहिए, जबकि जिनकी माताओं की मृत्यु हो गई है उन्हें अपनी मां की आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

तात्पर्य यह कि सनातन संस्कृति की मातृ शक्ति अब विश्व के लिए अपरिहार्य हो गयी है। स्त्री तत्व का यह वैश्विक शक्ति निरूपण केवल एक दिवस या एकदिवसीय उत्सव भर नहीं है बल्कि सनातन की उसी शक्ति निरूपण का स्वरूप है जिसमे मातृ देवो भव की भावना और उद्घोष है। यह विश्व मे सनातन की शक्ति के साथ स्थापना और उपस्थिति का बहुत बड़ा प्रमाण है।

अनाहत चक्र से प्रेरित है यहूदियों का स्टार ऑफ डेविड

अरुण प्रकाश

सनातन वैदिक धर्म लगभग सभी एशियाई पंथों का मातृधर्म है। एशियाई पंथों के बाह्य आकार व स्वरूप में चाहे जितनी भी भिन्नता हो, दार्शनिक धरातल पर सभी वेद-वेदांत के मत को ही मानते हैं। इनमें से अधिकतर पंथ तो स्वयं को वेद विरुद्ध होने का दावा भी करते हैं, तब भी वह न-न करते हुए वेद का ही गुणगान करते हैं। या उसी मत की पुनर्व्याख्या करते हैं। यह तथ्य निर्विवाद रूप से प्रतिष्ठापित है और इस पर अधिक जोर देने की जरूरत नहीं है।

स्टार ऑफ डेबिड दरअसल ऊर्ध्वमुखी और अधोमुखी दो त्रिभुजों के मिलन से बना है। तमिल मान्यताओं में ऊर्ध्वमुखी त्रिभुज को शिव का और अधोमुखी त्रिभुज को शक्ति का प्रतीक माना जाता है इस तरीके से दोनों के मिलन को एक सितारे के रूप में रूपांतरित किया जाता है। वहां इसे मुरूगन (कार्तिकेय) ईश्वर का प्रतीक चिन्ह माना जाता है।

(शिक्षक पत्रकार व लेखक। संस्थापक अध्यक्ष- स्वामिश्री पुरुषोत्तमाचार्य गुरुकुल विद्यापीठ, बहराइच।)

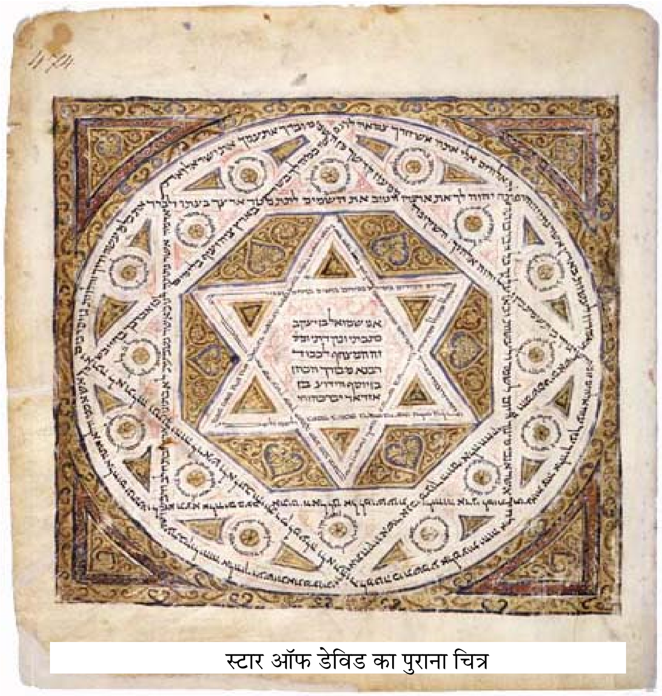

स्टार ऑफ डेविड का पुराना चित्र

दूसरी ओर अब्राह्मिक पंथ हैं। युदाइज्म (यहूदीवाद) इनका मूल है। सामान्य तौर पर देखें तो ईसाइयत, इस्लाम अपना आदि देव पुरुष अब्राहम को ही मानते हैं। वहीं यहूदियों की सभी अवधारणा व देवदूतों को भी यथारूप स्वीकार लिया है। इस्लाम से मुहम्मद साहब को निकालने से जो बचता है वह ईसाइयत है। ईसाइयत से जीसस को निकाल देने से जो बचता है वह यहूदी धर्म है। यानि मूल यहूदी हैं और यहूदियों के धर्म ग्रंथ भी महाप्रलय के सिद्धांत व मनु-सतरूपा (एडम व ईव) की हमारी अवधारणा को यथारूप स्वीकारते हैं।

इससे उनके भी हमसे संबंध होने के संकेत मिलते हैं। आज दार्शनिक धरातल पर वह हमसे भिन्न हैं, लेकिन उन पंथों के प्रतीक और परंपराएं वैदिक सनातन धर्म से उधार ली गई मालूम पड़ती हैं। कई परंपराएं तो यथारूप में ही प्रचलित हैं और कुछ शब्द भी आंशिक उच्चारण भिन्नता के साथ वहां भी स्वीकार लिए गए हैं।

विषय यहूदी धर्म में प्रयोग होने वाले स्टार ऑफ डेविड का है जोकि हमारे अनाहत चक्र से प्रेरित है। यहूदियों में स्टार आफ डेविड और शील्ड ऑफ डेविड नाम से षटकोणीय संरचना को ईश्वर तत्व का प्रतीक चिह्न माना जाता है। इस प्रतीक चिन्ह का रंग नीला है और इसे हम इजराइल देश के झंडे में भी देखते हैं। स्टार ऑफ डेबिड दरअसल ऊर्ध्वमुखी और अधोमुखी दो त्रिभुजों के मिलन से बना है।

तमिल मान्यताओं में ऊर्ध्वमुखी त्रिभुज को शिव का और अधोमुखी त्रिभुज को शक्ति का प्रतीक माना जाता है इस तरीके से दोनों के मिलन को एक सितारे के रूप में रूपांतरित किया जाता है। वहां इसे मुरूगन (कार्तिकेय) ईश्वर का प्रतीक चिन्ह माना जाता है। इस तरीके से आज के स्टार आफ डेविड की साम्यता तमिल मान्यताओं में मुरूगन के प्रतीक चिन्ह से भी मिलती है। लेकिन स्टार आफ डेविड का आज का स्वरूप 17वीं सदी से पुराना नहीं है। जबकि जो प्राचीनतम चित्रण मिलता है वह अनाहत चक्र से ही प्रेरित जान पड़ता है। हजारवीं सदी के आसपास का वह चित्रण जिसके मध्य में ऊर्ध्वमुखी व अधोमुखी त्रिभुजों का संयुक्त रूप, दो तिरछे वर्ग में बंद है। उस वर्ग को एक वृत्त से बंद किया गया है।

अनाहत चक्र हमारे शरीर में परिकल्पित सात चक्रों में से एक है। अनाहत चक्र नीचे के तीन और ऊपर के तीन चक्रों के बीच का चक्र है। इसके दूसरे प्रतीक चिन्ह में दो त्रिकोण तारक आकार में बनाए जाते हैं। एक त्रिकोण का शीर्ष ऊपर की ओर और दूसरे का नीचे की ओर संकेत करता है। जब अनाहत चक्र की ऊर्जा आध्यात्मिक चेतना की ओर प्रवाहित होती है, तब हमारी भावनाएं भक्ति, शुद्ध, ईश्वर प्रेम और निष्ठा की ओर उन्मुख होती है। यदि यह सांसारिक कामनाओं की ओ्र उन्मुख होती है तो इच्छा, द्वेष-जलन, उदासीनता और हताशा भाव में वृद्धि होती है। अनाहत चक्र को प्राण-वायु की पीठ कहा जाता है। अनाहत चक्र के प्रतीक चित्र में बारह पंखुडिय़ों का एक कमल भी है। यह हृदय के दैवीय गुणों जैसे परमानंद, शांति, सुव्यवस्था, प्रेम, संज्ञान, स्पष्टता, शुद्धता, एकता, अनुकंपा, दयालुता, क्षमाभाव और सुनिश्चिय का प्रतीक है। तथापि, हृदय केन्द्र भावनाओं और मनोभावों का केन्द्र भी है।

स्टार ऑफ डेविड के पुराने चित्रों में कहीं 12 तो कहीं 16 खाने हैं, जहां अनाहत चक्र में कमल की पंखुड़ियां हैं। जबकि केंद्रीय संरचना एक जैसी है। अनाहत चक्र योगिक प्रतीक है, जबकि शाक्त व बौद्ध परंपरा में इसे तंत्र से जोड़ा जाता है। इसी से दोनों तरफ के विद्वानों का मत रहा है कि यहूदियों में योग की परंपरा थी। हिमालय के योगी स्वामी राम ने एक यहूदी विद्वान के हवाले से बताया था कि आरम्भ में स्टार ऑफ डेविड यहूदियों में भी योगिक सिंबल ही था, बाद में यह उनकी पहचान बन गया। इससे न सिर्फ यहूदी प्रतीकों पर भारतीय प्रभाव सिद्ध होता है बल्कि योग की परंपरा अन्य प्राचीन पंथों में भी स्वीकार्य सिद्ध होती है।

आलेख

अजरबैजान भगवान का घर

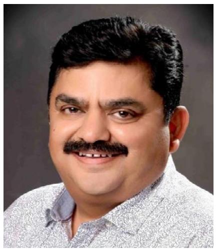

कृष्णकांत उपाध्याय

वर्तमान विश्व का एक देश है अजरबैजान। इसको अजरबैजान प्रजातांत्रिक गणतंत्र या अजरबैजान पीपुल्स रिपब्लिक के नाम से भी जाना जाता है। पेरिस शांति सम्मेलन में अजरबैजान, 1919-1920, कोकेशियान अजरबैजान के रूप में विदेश के कुछ राजनयिक दस्तावेजों में, क्रीमिया पीपुल्स रिपब्लिक और इदेल-उरल गणराज्य के बाद तुर्किक दुनिया और मुस्लिम दुनिया में तीसरा लोकतांत्रिक गणराज्य था। एडीआर यानी अजबैजान डेमोक्रेटिक रिपब्लिक की स्थापना अज़रबैजान नेशनल काउंसिल ने तिफ्लिस में 28 मई 1918 को रूसी साम्राज्य के पतन के बाद की थी। इसकी स्थापित सीमाएँ उत्तर में रूस, उत्तर-पश्चिम में जॉर्जिया का लोकतांत्रिक गणराज्य, पश्चिम में आर्मेनिया का पहला गणराज्य और दक्षिण में ईरान तक थीं।

अजरबैजान का नाम जिसे राजनीतिक कारणों से मुसव्वत पार्टी ने अपनाया, 1918 में अजरबैजान डेमोक्रेटिक रिपब्लिक की स्थापना से पहले, विशेष रूप से समकालीन उत्तर पश्चिमी ईरान के निकटवर्ती क्षेत्र की पहचान करने के लिए इस्तेमाल किया गया था। यह पूर्वी यूरोप औऱ एशिया के मध्य कैस्पियन सागर किनारे इस्लामी सम्मेलन संघ का एक देश है।

अज़रबैजान का अर्थ है 'Land Of Fires'। नब्बे प्रतिशत मुस्लिम आबादी वाले इस देश की सीमाएं आर्मेनिया, तुर्की, जॉर्जिया, रूस औऱ ईरान से मिलती हैं। अजरबैजान की राजधानी बाकू में सुराखानी (Surakhani) कस्बे में 30 एकड़ में बना है आतेशगाह पारसी-हिन्दू मंदिर (Atesgah Fire temple of Hindu-Zoroastrian)। आतेशगाह का अर्थ होता है ज्वाला देवी का घर। आतेशगाह फ़ारसी के दो शब्दों से मिलकर बना है, आतेश (fire) और गाह (House)। आतेश निकला है संस्कृत शब्द अथर्वन से। दूसरा शब्द 'गाह' निकला है संस्कृत के गृह से जिसका अर्थ होता है घर। विककीपीडिया इसको आज़रबाइजान लिखता है। कॉकेशस के पूर्वी भाग में एक गणराज्य है, पूर्वी यूरोप और एशिया के मध्य में बसा हुआ। भौगोलिक रूप से यह एशिया का ही भाग है। इसके सीमांत देश हैं- अर्मेनिया, जॉर्जिया, रूस, ईरान, तुर्की और इसका तटीय भाग कैस्पियन सागर से लगता हुआ है। यह १९९१ तक भूतपूर्व सोवियत संघ का भाग था। इस समय यहां की अधिकांश जनसंख्या इस्लाम धर्म की अनुयायी है और यह देश इस्लामी सम्मेलन संघ का सदस्य राष्ट्र भी है। यह देश धीरे-धीरे औपचारिक लेकिन सत्तावादी लोकतंत्र की ओर बढ़ रहा है।

'अज़रबैजान' नाम के उद्गम को लेकर कई प्रकार की अवधारणाएँ है। एक प्रचलित कहानी यह है कि यह नाम 'अट्रोपटन' शब्द से निकला है। अट्रोपट फ़ारसी अकामीनाईड

> **अज़रबैजान में प्रारंभिक मानव बस्तियों के चिह्न पाषाण युग के बाद के दिनों के हैं। 550 ईसापूर्व में एक्यूमेनिडा राजवंश ने इस क्षेत्र पर विजय प्राप्त की थी, जिससे पारसी धर्म का उदय हुआ और बाद में यह क्षेत्र सिकंदर के साम्राज्य का भाग बना और बाद में उसके उत्तराधिकारी, सेलियूसिडा साम्राज्य का। अल्बानियाई कॉकेशन लोगों ने चौथी शताबदी ईसापूर्व में इस क्षेत्र में एक स्वतंत्र राजशाही की स्थापना की, लेकिन 95-67 ईसापूर्व में टिगरानीस 2 महान ने इसपर अधिकार कर लिया।**

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार और जनता टी वी उत्तर प्रदेश के संपादक हैं।)

राजवंश के समय में एक क्षत्रप था, जिसे सिकंदर महान ने आक्रमण करके परास्त किया और अट्रोपटन को स्वाधीनता मिली। उस समय यह क्षेत्र मीदिया अट्रोपाटिया या अट्रोपाटीन के नाम से जाना जाता था। इस नाम की मूल उत्पत्ति की जड़ें प्राचीन ईरानी पंथ, पारसी धर्म में मानी जाती हैं। आवेस्ता के एक दस्तावेज़ में इस बात का उल्लेख है 'âterepâtahe ashaonô fravashîm ýazamaide', प्राचीन फ़ारसी में जिसका शाब्दिक अनुवाद है 'पवित्र अटारे-पटा के फ़्रावशी की हम वंदना करते हैं'। अट्रोपटनों ने अट्रोपटन (वर्तमान ईरानी अज़रबैजान) क्षेत्र पर शासन किया। 'अट्रोपटन' नाम स्वयं एक प्राचीन-ईरानी, संभवतः मीदन, का यूनानी ध्वन्यात्मक युग्म है, जिसका अर्थ है 'पवित्र अग्नि द्वारा रक्षित'।

अज़रबैजान में प्रारंभिक मानव बस्तियों के चिह्न पाषाण युग के बाद के दिनों के हैं। ५५० ईसापूर्व में एक्यूमेनिडा राजवंश ने इस क्षेत्र पर विजय प्राप्त की थी, जिससे पारसी धर्म का उदय हुआ और बाद में यह क्षेत्र सिकंदर के साम्राज्य का भाग बना और बाद में उसके उत्तराधिकारी, सेलियूसिडा साम्राज्य का। अल्बानियाई कॉकेशन लोगों ने चौथी शताबदी ईसापूर्व में इस क्षेत्र में एक स्वतंत्र राजशाही की स्थापना की, लेकिन ९५-६७ ईसापूर्व में टिगरानीस २ महान ने इसपर अधिकार कर लिया।

अज़रबैजान को लेकर दुनिया मे बहुत लिखा जा रहा है। इसी क्रम में शोभना राष्ट्रवादी ने ज्वाला के साथ पोस्ट भी लिखी है।इसी क्रम में अर्मेनियन दाशनिक और बहु विषय विज्ञानी Anania Sirakatsi ने इस जगह को 'Place with seven worshiped holes' लिखा है। उन्होने लिखा है कि अग्नि के अलावा यहां वायु, पृथ्वी, शिव, गणेश, राम कृष्ण और हनुमान की पूजा होती थी। आठवीं सदी के हिस्टोरियन Ghevond ने 730 AD में इस जगह को atshi-baguan लिखा है जिसका अर्थ है अग्नि भगवान का घर। Atshi फ़ारसी के Atishi से निकला है जिसका अर्थ है अग्नि और Atishi निकला है अथर्वन से जिसका अर्थ है अग्नि। Baguan निकला है फ़ारसी शब्द बग(baga) से जिसका अर्थ है God और बग निकला है संस्कृत शब्द भग (bhaga) से जिसका अर्थ है भगवान। अज़रबैजान भी अथर्वन से ही लिया गया ऋण सूचक शब्द (Loanword)है। अथर्वन ब्रह्मा के एक पुत्र का नाम था जिन्होंने अग्नि की खोज की थी।

पुरीष्योसि विश्वम्भराअथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने ।
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ।।

अर्थात आप पुरीष्य (पशु-पोषक) हैं, विश्व भर के आश्रय हैं। हे अग्ने ! अथर्वन् ने ही सबसे पहले आपका मन्थन किया था। हे अग्ने ! अथर्वन् ने कमल से मन्थन करके पुरोहित विश्व के सिर से तुम्हारा आविर्भाव किया ।

पारसी ग्रन्थ अवेस्ता में भी लिखा है कि अथ्रवन (अथर्वन्)

नामक याजक काठ से काठ रगड़कर अग्नि उत्पन्न करते थे। सुराखानी फारसी का शब्द है जिसका संस्कृत में अर्थ है 'Mine of Gods', देवताओं की खान जो सुर देवताओं के लिए प्रयोग किया जाता है जो असुरों के खिलाफ खड़े होते हैं।

यह मंदिर हिन्दू देवी ज्वाला देवी को समर्पित है। यहां निरंतर अग्नि प्रज्वलित रहती है और बैकग्राउंड में गायत्री मंत्र बजाया जाता है। मंदिर में स्थापित एक शिलालेख में संस्कृत में लिखा गया है, श्री गणेशाय नमः। दूसरे शिलालेख में पवित्र ज्वाला जी को प्रतिष्ठित करने की तारीख विक्रम सम्वत 1802 लिखी हुई है जो 1745 AD है। मंदिर में एकमात्र फ़ारसी शिलालेख है जिसमे ज्वाला प्रतिष्ठित करने की तिथि 1158 हिजरी लिखी है। पारसी कैलेंडर Qadimi में 1158 हिजरी 1745 AD के बराबर ही है। एक अन्य शिलालेख में पंजाबी में सत् श्री गणेशाय नमः और आदि ग्रन्थ की प्रार्थना लिखी हुई है। एक अन्य शिलालेख में देवनागरी लिपि में संस्कृत भाषा मे भगवान शिव का अभिनंदन किया गया है। शिलालेख में स्वस्तिक का चिह्न और त्रिशूल भी बना हुआ है।

18वीं सदी में मुम्बई के पारसियों ने इस मंदिर में विज़िट किया था उसके बाद से पारसी पुजारी यहां पूजा पाठ के लिए निरंतर भेजे जाते रहे है। Sir J. Henery 1905 में लिखी अपनी किताब में लिखते है कि अंतिम भारतीय पारसी पुजारी मुम्बई से 1860 में भेजा गया जिसकी बाकू में ही 1880 में मृत्यु हो गई। बाकू के इतिहास में कहीं भी इसे पारसी मंदिर नहीं कहा गया है। इसे 'हिन्दू' या 'भारतीय मंदिर' ही लिखा गया है। यूरोपियन इतिहासकार Jonas Hanway लिखते है कि Geber(पारसी सन्यासी समुदाय) और Gaurs(हिन्दू पुजारी समुदाय) दोनों ही इस मंदिर में पूजा अर्चना करते थे। लेकिन इतिहासकार A.V. William Jackson उनके दावे को गलत बताते हुए लिखते है कि दोनो ही समुदाय भारतीय हिंदुओं के थे जो तिलक लगाते थे, शाकाहारी थे और गाय की पूजा करते थे। कई पारसी विद्वान भी इसे पारसी मंदिर नही मानते है। मशहूर पारसी इतिहासकार और विद्वान Sir J. J. Modi ने कई वर्षों तक इस मंदिर का मुआयना किया और प्राचीन इतिहास ग्रन्थों से तथ्यों के मिलान के बाद दावा किया था कि ये ज्वाला देवी को समर्पित एक हिन्दू मंदिर है। भारत के हिमांचल स्थित कांगड़ा श्राइन के ज्वाला देवी मंदिर का ये वृहत रूप है।1883 में पेट्रोलियम प्लांट्स इंडस्ट्री के दबाव में इस मंदिर को पूजा अर्चना के लिए बन्द कर दिया गया। मंदिर प्रांगण में ज्वाला जी अभी भी प्रज्वलित है। वजह है मंदिर में हर साल आने वाले औसतन 15000 यात्रियों से होने वाली आर्थिक कमाई।

प्रमाण स्थापित करते हैं कि हमारी सनातन संस्कृति का इस भूभाग पर कितना प्राचीन प्रभाव रहा है। ऐसा इसके आसपास के अन्य देशों पर भी लागू होता है। स्वाभाविक है कि जब भी धरती पर सभ्याताओं की जड़ों की तलाश का कोई अवसर मिलेगा तो मूल से सनातन का ही आधार प्रस्फुटित होगा ।

आलेख

चातुर्मासः शास्त्र और लोकपरंपरा

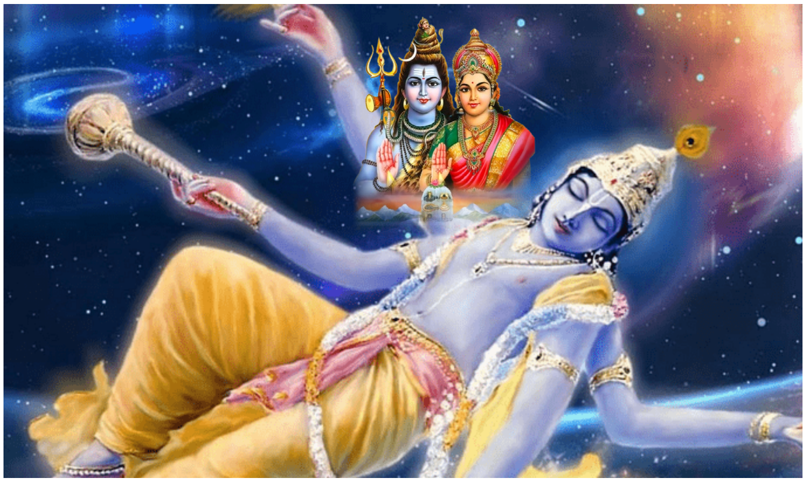

प्रो राकेश कुमार उपाध्याय

भारत अद्भुत है। यहां भगवान भी विश्राम करने चले जाते हैं। कल 20 जुलाई अर्थात आषाढ़ शुक्ल पक्ष की पद्मा एकादशी अर्थात् देवशयनी एकादशी है। मान्यता के अनुसार, देवशयनी एकादशी इसलिए है क्योंकि इस जगत के पालनहार भगवान विष्णु इस दिन से क्षीर सागर में शयन करने चले जाते हैं। भगवान चार महीने बाद कार्तिक महीने के शुक्ल पक्ष की एकादशी को जागते हैं इसलिए इसे देवोत्थान या देवठान या देवठावन या हरिप्रबोधिनी एकादशी कहते हैं।

इस प्रकार देवशयनी एकादशी से चातुर्मास व्रत का प्रारंभ हो जाता है क्योंकि जब भगवान ही विश्राम पर चले गए तो उनकी प्रकृति भी उन्हीं के साथ विश्राम-भाव में ही चली जाती हैं। स्वाभाविक रूप से संसार के जीवन में भी ठहराव आता है। जीव-जन्तु-जंगल-जगमंगल के सभी अपने साधनों समेत अपना अपना सुरक्षित ठौर-ठिकाना तलाशकर समय की प्रतीक्षा में ठहर जाते हैं क्योंकि सब जान जाते हैं कि प्रकृति जलमय हो रही है, प्रकृति के परमेश्वर भी इसी जल में योगनिद्रापूर्वक लीन हो रहे हैं।

प्रकृति के इस रूप को भारतीय परंपरा ने जब देखा तो उसका मंतव्य उसी तरह समझ लिया जैसे कि मनुष्येतर सभी जीव समझते और बरतते हैं। कहीं रुककर, ठहरकर, समुचित राशन-साधन जुटाकर आत्मचिन्तन, महामंथन, गुरु-शिष्य मंडली का कथोपकथन आश्रमों, गुरुकुलों समेत तमाम ठिकानों में चार महीने तक निरंतर चलने की यह परंपरा वेदकाल से ही चली आ रही है, शिक्षण कार्य के लिए यह चतुर्मास बहुत ही प्रेरक और शुभ माना गया है। तो ग्राम-किसान-खेत-खलिहान में भी धान की रोपाई के बाद का समय उस अंकुरण की प्रतीक्षा में आनन्दपूर्वक बीतता है जबकि ग्रीष्म की तपिश कुछ मिटने लगती है, धरती की गर्मी थमने लगती है। चारों ओर मॉनसून की बरसात में ताल-तलैया-पोखर सब उलट जाते हैं, कूप-तड़ाग जल से लबालब भर उठते हैं। भूमि और बादलों का मिलन जीवन के सारे सूखे को मिटाता प्रतीत होता है,दिन और रात बादलों की छायी धुंध में मन के भीतर के किसी गहरे कोने में उत्पन्न राग गीत-संगीत के प्रति गहन आकर्षण पैदा करता है।

झमाझम बारिश में डूबे धान के खेतों और प्राकृतिक सुषमा से हरी भरी धरती की हरियाली को देखकर आखिर किसका मन झूम-झूम जाने को नहीं करता है। तनाव से मुक्ति का साधन है गीत और संगीत। रिमझिम संगीत से प्रकृति स्वयं को सारे ताप से मुक्त कर लेती है। इसी तरह खुद को सब वेदनाओं से मुक्तकर मुस्कराने, नाचने-गाने की लोक परंपरा ही है चौमासा जिसमें आध्यात्मिक चातुर्मास के भाव को लोक अपने रंग में ढालता है। भारत का लोक-समाज इस चौमासे को गीत-संगीत की धुनों से सजाता और मनाता आया है। हर प्रांत में इसका अपना सुर-ताल और संगीत है। इसकी अलग अलग छटा हजारों-लाखों ग्रामों में आज भी देखने को मिलती है।

सावन के झूले इस संगीत को अद्भुत गति देते हुए आसमान चूमते हैं, महिलाओं और बेटियों की रंगत ही बदल जाती है, सब प्रकृति के साथ उसी की लहर में झूमती हैं और सुमधुर गीत-संगीत हर स्त्री-पुरुष के भीतर के बदराए मन से खुदबखुद बाहर निकलकर बुदबुदाने लगता है, तन-मन-बाहर और भीतर सब मानो नाच उठता है। धरती का पोर-पोर घनघोर घटाओं की गर्जना सुनसुनकर रोमांच में डूबने लगता है तो कण-कण जल सैलाब से लहालोट हो जाती यह भूमि साक्षात क्षीर-सागर में बदलती दिखने लगती है, जिसके कण-कण में जगत के पालनहार अपनी लीला रचाते हुए गहन निद्रा में डूब जाते हैं। कहते हैं कि भगवान इस अवधि में दान-पुण्य आदि, कथा-कीर्तन, भजन-सुमिरन-सुमधुर गीत-संगीत आदि के द्वारा अपने चाहने वालों के हृदय में आनन्द भरते रहते हैं।

सनातन : तार्किकता की विचारसरणी

कमलेश कमल

'प्रश्न करना' और 'मजाक उड़ाना' दो ऐसी क्रियाएँ हैं जिनमें वैपरीत्य है- ठीक ऐसे ही जैसे 'तर्क करना' और 'कुतर्क करना' विविध आयामों से विरोधी संक्रियाएँ हैं। प्रश्न करना और तर्क करना आधुनिकता-सूचक है, अग्रगामिता है, ज्ञान-पिपासा है, ज्ञान का संधान है। इसके विपरीत 'मजाक उड़ाना' और 'कुतर्क करना' पश्चगामिता है, बौद्धिक विकलांगता है, मानवीय संस्कृति की विकास यात्रा में पीछे छूटने का परिचायक है।

प्रश्न कोई भी कर सकता है। उसका स्वागत हो, न कि विरोध। जो समाज जितना बन्द होता है, वहाँ प्रश्न और तर्क करने की उतनी ही कम छूट होती है। सनातन संस्कृति तो शास्त्रार्थ की संस्कृति रही है, तर्क की विचारसरणी रही है।

किसी विश्वास में, मत में या किसी ग्रंथ में सब अच्छा ही है, यह सनातन की सोच नहीं है। नोट करें कि ग्रंथ का अक्षर-अक्षर पवित्र और दोषमुक्त हो...यह सनातनी भावना है ही नहीं। यहाँ तो वैभिन्न के सम्मान की परम्परा है।

वायुपुराण कहता है-

मुंडे मुंडे मतिर्भिन्ना कुंडे कुंडे नवं पयः,
जातौ जातौ नवाचाराः नवा वाणी मुखे मुखे।

अर्थात् जितने मनुष्य हैं, उतने ही विचार हैं। एक ही स्थान के अलग अलग कुँओं के पानी का स्वाद अलग-अलग होता है। एक ही संस्कार के लिए अलग-अलग जातियों में अलग-अलग रिवाज होता है तथा एक ही घटना का वर्णन हर व्यक्ति अपने ढंग से अलग-अलग करता है।

एक उदाहरण देखिए कि वेद को धर्म का मूल कहा गया है पर स्वयं गीता में लिखा है कि कुएँ की आवश्यकता तब तक है जब तक आदमी को पानी की प्यास है और सामने सरिता का प्रवाह नहीं है, पर प्यास बुझ जाने या सामने नदी लहरा रही हो तो कुएँ की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती– ठीक इसी तरह वेद की आवश्यकता भी तभी तक है जब तक जीवन के प्रयोजन की जिज्ञासा है, जब जीवन ब्रह्ममय हो जाए तब इसकी कोई आवश्यकता नहीं रहती।

सनातन संस्कृति में इतना वैभिन्य और इतना वैचित्र्य है कि कभी-कभी परस्पर विरोधी संकल्पनाओं से हमारा साक्षात्कार होता है और अपने आप में कोई ग़लत नहीं होता। यहाँ शास्त्राचार है तो लोकाचार भी है। यदि सनातन धर्म शुद्ध रूप से कोई पोथी-केंद्रित धर्म होता तो पशुयाग और गोमेध आज भी हो रहे होते। यह तो सर्वभूतों के हितों के रक्षण की व्यवस्था

“धर्म और अध्यात्म से संबंधित प्रश्न को किसी से भी पूछ देना ऐसा ही है जैसे भौतिकी का प्रश्न किसी गड़ेरिए से करना। यहाँ तक कि धर्म के मामले में भी कोई विद्वान् सभी मामले का जानकार नहीं हो सकता। यहाँ कुछ बातें प्रतीकात्मक हैं, कुछ गूढ़ दार्शनिक, कुछ मिथकीय, कुछ विभिन्न साधना पद्धतियों से सम्बद्ध, कुछ जन-श्रुतियाँ तो कुछ प्रक्षिप्त। ऐसे में अत्यधिक सावधानी और समझदारी की अपेक्षा की जानी चाहिए।

(लेखक केन्द्रीय सुरक्षा बल में अधिकारी, उपन्यासकार, भाषाविज्ञानी एवं राष्ट्रवादी चिंतक हैं।)

करने वाला एक सतत विकसनशील और कल्याणकारी धर्म है।

यहाँ आप तर्क कर सकते हैं, विरोध कर सकते हैं। त्याग को पकड़िए, भोग को पकड़िए, स्वतंत्रता है। लेकिन जो भी करें, गहराई में उतरकर करें, उथले न बनें। कुछ लोग गहराई में उतरकर अध्ययन नहीं करते, बस कुछ वैचारिक वमन करने, कुछ उद्धृत करने (Quote) के लिए 2-4 पंक्ति पढ़ लेते हैं, या गूगल कर लेते हैं। ऐसे लोगों को उद्धृत करने (Quote), पढ़ने(read), अध्ययन करने (study) और मनन करने (contemplation) के क्रम और अंतर को समझने की भी आवश्यकता है। छिछला ज्ञान कभी-कभी बड़ा शोर करता है, जिसके लिए हिंदी में मुहावरा बना- '**थोथा चना बाजे घना**।'

माना जाता है कि योग्य व्यक्ति से प्रश्न करना उत्तम मानसिक स्वास्थ्य का संकेतक है। ऐसे में, प्रश्नकर्ता को भी चाहिए कि सही व्यक्ति से सही समय पर और सही रीति से प्रश्न करे।

धर्म और अध्यात्म से संबंधित प्रश्न को किसी से भी पूछ देना ऐसा ही है जैसे भौतिकी का प्रश्न किसी गड़ेरिए से करना। यहाँ तक कि धर्म के मामले में भी कोई विद्वान् सभी मामले का जानकार नहीं हो सकता। यहाँ कुछ बातें प्रतीकात्मक हैं, कुछ गूढ़ दार्शनिक, कुछ मिथकीय, कुछ विभिन्न साधना पद्धतियों से सम्बद्ध, कुछ जन-श्रुतियाँ तो कुछ प्रक्षिप्त। ऐसे में अत्यधिक सावधानी और समझदारी की अपेक्षा की जानी चाहिए।

स्पष्टता के लिए एक महत्त्वपूर्ण तथ्य द्रष्टव्य है कि सनातन सत्य और ऋत का सहज, सरल और सुमिलित गठबंधन है। यह सृष्टि के साथ तादात्म्य या सहकार का धर्म है अर्थात् यह मनुष्य और प्रकृति को अविलग देखती है। इसके जितने भी अनुष्ठान हैं, वे इस तादात्म्य के साधन हैं।

प्रकृति से सहकार देखिए कि ऋतुचक्र के साथ ही यज्ञ का विधान दिखता है– आग्रयनेष्टि (मार्गशीर्ष या नवंबर में शरद ऋतु की समाप्ति के बाद), चैत्र में फसल पकने पर चैत्री या शूलगव, श्रावण में श्रावणी, आश्विन में श्राद्ध यज्ञ, वर्षा में चातुर्मास्य होते थे। इसके अतिरिक्त प्रति अमावस्या और पूर्णिमा को दर्श पौर्णमास इष्टि का विधान हमें सनातनी परम्परा में दिखता है। महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि ऋतुओं के मोड़ के साथ यज्ञ को जोड़ने का अर्थ था यज्ञ को ऋत के रूप में देखना।

यज्ञ आदि सनातनी परंपराओं पर प्रश्न करने के पहले हमें पहले समझना होगा कि ये वास्तव में क्या हैं, इनका प्रयोजन क्या है, इनकी उपयोगिता क्या रही है। यज्ञ और उपासना को क्रमशः सनातन का बाह्य और आभ्यन्तरिक पक्ष समझा जा सकता है। यज्ञ-संस्था वैदिक काल में सामाजिक संस्था थी, जिसमें समाज की संहत इकाई परिलक्षित होती थी और किञ्चित् इसलिए यज्ञ का विकास ब्रह्म के साक्षात्कार में हुआ।

भाषिक इतिहास को देखें, तो प्रारम्भ में 'ब्रह्म' शब्द का अर्थ था मंत्र और मंत्र बोलने वाला। अब यज्ञ में भी मंत्र ही उच्चरित होते थे तो क्रमागत रूप से यज्ञ 'ब्रह्म' हुआ और समूची सृष्टि ही यज्ञ की भावना से भावित हुई।

मंत्र शब्द का व्युत्पत्ति के आधार पर अर्थ है– मनन का साधन। मंत्र के द्वारा जो उपस्थिति भावित हो, वही उपस्थिति यज्ञ के लिए वास्तविक उपस्थिति है। इस अर्थ में यज्ञ संयोजक है– प्रकाश और अप्रकाश का, अग्नि और सोम का, आत्मा और अनात्मा का, देव और मनुज का।

हमें जानना चाहिए कि जो मंत्र पढ़ता था, वह देवता की शक्ति का आवाहन करता था, इसलिए वह भी 'ब्रह्मा' कहलाया। इसलिए आज भी यज्ञोपवीत, विवाह आदि संस्कारों में मंत्र पढ़ने वाले को 'ब्रह्मा' कहा जाता है। वहाँ कोई यह कह कर मज़ाक उड़ाने लगे कि कोई व्यक्ति स्वयं 'ब्रह्मा'(ईश्वर) कैसे हो गया, तो यह उसके ज्ञान की सीमा कही जाएगी, न कि सनातन की।

जो लोग यज्ञ को केवल अग्नि से जोड़कर देखते हैं, उन्हें ऐतरेय ब्राह्मण का संदर्भ देखना चाहिए जिसमें कहा गया है कि बाहर की अग्नि तो प्रतीकमात्र है, वस्तुतः अग्नि तो अपने भीतर है– '**आत्मन्येव हिता भवन्ति**।'

इस तरह स्पष्ट है कि यज्ञ बाहरी वस्तु का अग्नि में प्रक्षेप मात्र नहीं है अपितु इसमें तो यजमान स्वयं अपने को अर्पित करता है विभिन्न प्रतीकात्मक अनुष्ठानों से। गीता में तो जप को सबसे बड़ा यज्ञ कहा गया है और साक्षात् श्रीकृष्ण का स्वरूप कहा गया है– '**यज्ञानां जपयज्ञोस्मि**।'

इतना ही नहीं, पढ़ना-पढ़ाना भी यज्ञ है जिसे ब्रह्मयज्ञ या ऋषियज्ञ कहा गया जिसके अंतर्गत स्वाध्याय, मंत्र, निदिध्यासन

आदि है–

'अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिभौरतो नृयज्ञोतिथिपूजनम्।।'

प्रारंभ में देवता के निमित्त प्रिय अन्न या भोज्य पदार्थ अर्पित किया जाता था और अर्पण करते समय उसका मंत्र द्वारा आवाहन किया जाता था या कहें कि मंत्रोच्चारण के साथ देवता की उपस्थिति भावित होती थी। मंत्र का नाम 'ब्रह्म' इस कारण ही हुआ कि वह देवशक्ति का वर्धन करता था– 'यस्य ब्रह्म वर्धनं' (इन्द्रसूक्त, ऋग्वेद) सनातन धर्म पर कोई भी टिप्पणी करने के पहले यह जानना चाहिए कि इसके चार प्रमुख अंग हैं–

वेद, स्मृति, सदाचार और आत्मानुकूलता–

'वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ।।

मनुस्मृति (2/12)' इसका अर्थ है कि शास्त्र का ज्ञान कोई ठहरा हुआ ज्ञान नहीं है, यह वेद से परिभाषित है, स्मृति सदाचार से और सदाचार अपनी अनुकूलता से। इससे स्पष्ट होता है कि शास्त्र हमारे यहाँ कोई जड़ वस्तु नहीं, अपितु निरंतर जीवन में उतरते रहने वाला एवं स्मृति और अनुकूलता से समृद्ध होने वाला मनुष्य का निरंतर अनुभव है। यहाँ ज्ञान आचरण में उतरे बिना अधिक मूल्य का नहीं माना जाता।

इसी तरह हिंदू जीवन दर्शन की तीन मूल स्थापनाओं जन्मांतरवाद, कर्मवाद और आनृण्य को समझे बिना बहुत सी बातें समझ नहीं आएँगी, जैसे गणित या भौतिकी के कुछ सूत्रों को समझे बिना उनके प्रश्न हल नहीं हो सकते। ऐसे में धैर्य के साथ जानने-समझने की कोशिश होनी चाहिए।

उदाहरण के लिए भक्ति का मार्ग आपको पसंद नहीं आता तो इस पर प्रश्न करने के पहले देखिए कि सनातन इस बारे में क्या कहता है– आपको पता चलेगा कि बाह्य पूजा सरल लोगों का मार्ग है। जो बाह्य पूजा में आडम्बर देखते हैं, उनके लिए अलग विधान है। वे ज्ञान मार्ग पकड़ें, योग मार्ग पकड़ें, कर्म मार्ग पकड़ें, जप करें, निराकार का ध्यान करें, समाहित चिता से प्राणों का प्राणों में होम करें, कुंडलिनी साधें, सनातन-प्रवाही सत्य को अपने जीवन की सच्चाई और सिधाई में उतारें। जिन्हें तीर्थयात्रा से परेशानी है उन्हें जानना चाहिए कि सनातन में तीर्थ क्या है और उसके कितने प्रकार हैं। तीर्थ वह है जहाँ से आप पार उतरते हैं। गुरु भी तीर्थ हैं और शास्त्र भी तीर्थ हैं। आप अच्छी पुस्तकों का अध्ययन करें। मतलब यह कि सनातन बहुविधता को नष्ट नहीं करता, उसको सम्मान देता है, सार्थकता देता है।

तथ्य यह है कि किसी पुरातन प्रथा, श्लोक, मान्यता आदि का सीधे मज़ाक उड़ाना अल्हड़ता, फूहड़ता, हीनभावना, गुस्सा आदि में से किसी एक या अनेक का परिचायक हो सकता है, लेकिन अगर बड़ी और भारी कुल्हाड़ी उठाने का अभ्यास और सामर्थ्य नहीं, तो इसे उठाने वाला स्वयं घायल होगा, यह तय है। ध्यान दें कि Philosophy के foolish use (दर्शन का मूर्खतापूर्ण प्रयोग) और logic के illogical use (तर्क का अतार्किक उपयोग) ने इस देश का बेड़ा गर्क किया है अज्ञानता की भट्ठी में जब तर्क पकता है, तो यह या तो फूहड़ होता है या विषैला। जब पहले से ही कुछ उत्तर सोच लिया गया हो या उद्देश्य ही किसी को तंग करना हो, तब प्रबल संभावना है कि बुद्धि की भट्ठी से विषैला धुँआ ही निकलेगा। दिक़्क़त यह भी है कि ऐसे तर्क देने वाले को इसका अंदाज़ा नहीं होता कि उसने क्या एकांगी, घटिया, अधकचरा या कचरा सोचा या उगला है। उसे तो लगता है कि उसने कोई तोप का गोला दाग दिया है।

एक तथ्य यह भी है कि धार्मिक ही नहीं किसी भी विषय की मीमांसा अध्यवसाय, वैचारिकी और तार्किकता का एक न्यूनतम स्तर और गाम्भीर्य की अपेक्षा रखती है। क्या 9वीं कक्षा की भौतिकी में light chapter में अर्जित ज्ञान के स्तर पर मोतियाबिंद का ऑपरेशन किया जा सकता है? (स्मरण रहे वहाँ भी इसकी चंद पंक्तियों में चर्चा और निदान है, जिसे आगे कोई नेत्र-रोग विशेषज्ञ (ophthalmologist) अपने MBBS के वर्षों को सफलतापूर्वक पूर्ण करने के बाद 2-3 वर्ष और देकर सीखता है। यही बात सामाजिक विज्ञान में है, भाषा-विज्ञान में है और अध्यात्म तथा धर्म के परिक्षेत्र में भी है।

मन्तव्य यह कि वैचारिकी के जगत् में आगे बढ़ने के लिए अध्ययन की ही सीढ़ियों से ही गुजरना होता है। अध्यवसाय को व्रत बनाना होता है। इनमें बाधक तत्त्व जैसे- काम, लोभ, क्रोध, ईर्ष्या, हीनभावना आदि अज्ञान से ही उपजते हैं, जिनसे मुक्ति के लिए ज्ञान से बड़ा कोई यज्ञ नहीं।

'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।'

धर्म से संबंधित बकवास बातें जो आपको दिखती हैं, उनपर पढ़िए। मिलावट है, प्रक्षिप्त है या क्या है– जानने समझने के लिए पढ़िए। उनकी कमी निकालने, उसे छिन्न-भिन्न करने के लिए ही पढ़िए लेकिन ख़ूब पढ़िए। और लोगों को भी आपसे पहले यह लगा होगा, आप अकेले इतने तार्किक पैदा नहीं हुए हैं। जो महान् तार्किक आपसे पहले हुए, उन्होंने भी पढ़कर ही इसे जाना या काटा; facebook या व्हाट्सअप पर ओछे वाग्विलास से नहीं। तो ढूँढिए! उनमें कुछ ठीक होंगी और कुछ सच ही बकवास होंगी। लेकिन यह तय मानिए कि आप स्वयं संशय में नहीं रहेंगे, और आँख बंद कर हवा में तीर नहीं मारेंगे। आपका मन दर्पण की तरह साफ हो जाएगा। इति शुभम् !

भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से सनातनी स्थापनाओं का रक्षण

विडंबना यह है कि आज का बहुसंख्यक आस्तिक हिन्दू पढ़ता कम है, भजता और भांजता ज्यादा है। बेचारा चुपकर सबको जल चढ़ा देता है और सबकी सुन भी लेता है। शास्त्रों की अवगाहना करे, ज्ञान का अनुसंधान करे, तर्कयुक्त बने तब तो विषैले वामपंथ के मिथ्या तर्कों, स्थापनाओं को काटे। इसी प्रश्न को लें, तो आगे भाषा-विज्ञान (माहेश्वर सूत्र से निकले नाद विज्ञान और व्याकरण) और अन्तर्पाठीय विधि से हम देखेंगे कि किस तरह सरस्वती का ब्रह्मा की पुत्री और पत्नी होना– दोनों स्थापनाएँ प्रतीकात्मक हैं, भौतिक नहीं।

आइए इस प्रश्न पर गहराई से विचार करने से पूर्व इन दोनों शब्दों के व्युत्पत्तिमूलक अर्थ को समझते हैं। पहले सरस्वती शब्द को देखते हैं–

सरस्वती **(स+रस्+वती)** शब्द बना है–

रस +अच्=रस। इसका कोशगत अर्थ है– **सार, जल, मधुर, कटु, अम्ल, रसायन, पारद, वीर्य, विष, दूध, अमृत** आदि।

रस क्या है और सनातन में किस अर्थ में लिया जाता रहा है? आदिवेद ऋग्वेद में रस का प्रयोग है– पेय के अर्थ में, जल के अर्थ में, 'सार' अर्थ में।

तैत्तरीय उपनिषद् में 'परम ब्रह्म' को 'रस' कहा गया है, क्योंकि उसको प्राप्त कर जीव आनन्द का अनुभव करता है। वैसे भी सुख पाना सबकी प्रवृत्ति होती है– 'सुखार्था सर्वभूतानां प्रवृत्तिः।'

साहित्य में देखें, तो रस को सबसे प्रमुख काव्य तत्त्व माना गया है। काव्य सरस् या रसयुक्त होना ही चाहिए या इसमें सरस्वती तत्त्व होना ही चाहिए।

–'रस्यते सौ इति रसः।'

रस की भी मूल ध्वनि है 'सृ'। 'सृ' ध्वनि–जो बहता है। ज्ञान बहता है। प्रवाह है इसमें; इसलिए यह रसयुक्त है या 'सरस्' है... या कहें कि इसमें 'सरस्वती तत्त्व' है।

अब 'ब्रह्मा' शब्द पर विचार करते हैं–

ब्रह्मा या ब्रह्म बना है – 'ब्रह' धातु से। इसका अर्थ है– विस्तार, बढ़ना, फैलना। इस तरह भाषा की दृष्टि से ब्रह्मा विशाल है, नित विस्तार है, चिर विस्तार है, असीम है, यही तो big bang theory है, महाविस्फोट का सिद्धान्त है। इसलिए यह जगत्कारण है।

ब्रह्मा देवता हैं। यह देवता क्या है? ब्रह्मा देवता क्यों और कैसे हैं? देव– दिव् धातु, अच् प्रत्यय। दिव् से दिव्य। देवता वह है

जिसमें दिव्यता है, दिव्यता है प्रकाश, ज्योति, ऊर्जा, आभा। Big bang theory में भी जो फैल रहा है, प्रकीर्ण हो रहा - वह है प्रकाश। उस दिव्यता को, उस देवत्व को ब्रह्मा कहा गया।

जानना रोचक है कि देवता का आवाहन कुश पर किया जाता था जिसे भी संस्कृत में 'बर्हि' कहा गया जिसका अर्थ है बढ़ने वाली। इसी तरह जानना चाहिए कि आख़िर ब्रह्मा को 'विधाता' कहा गया तो क्यों? यह भी कहा जाता है कि ब्रह्मा जी ने सृष्टि की नींव रखी, बनाई। कोई कहता है कि विधाता ने सृष्टि रची... क्या है इसका अर्थ?? विधाता शब्द के मूल में ही इसका उत्तर छिपा हुआ है : विधाता– धस् से बना है। धा– रखना, लाना, पकड़ना, पाना, धात्री, धीया ...इसी मूल के शब्द हैं।

इसी तरह का एक शब्द है ब्रह्माण्ड। ब्रह्मांड- ब्रह्म के प्रभाव से उत्पन्न अंडाकार सृष्टि (सृ - जो बहता है, सरकता है)। अब कोई विज्ञान न जानने समझने वाला पण्डित आपसे यह कह दे कि ब्रह्मा का अंडाणु ही ब्रह्माण्ड है, तो उसे मान लेने वाला महामूर्ख ही कहलाएगा।

ध्यातव्य है कि सनातन संस्कृति के शब्दों की उत्पत्ति, विकास, स्थिति, लय में क्रम-विकास और कार्य कारण का सिद्धान्त सदा विद्यमान रहता है। यहाँ भी ध्यान दें कि सरीसृप भी इसी 'सृ' से बना है जिससे सृष्टि बनी है।

शब्द ब्रह्म है। शब्द सदा विस्तार पाते हैं। जितने रसयुक्त होंगे उतने फैलेंगे। यहाँ शब्द को ही देखिए– यह बना है 'शप्' धातु से जिसका अर्थ है ध्वनि। स्फोट शब्दः। ध्वनि शब्द गुणः। अब ध्वनि है 'ऊर्जा' ! नाद स्वर। इसे भी विज्ञान से मिलाकर देखें– big bang theory के बाद, ब्रह्मांड में प्रकाश और ध्वनि तो हुई, लेकिन जीवन वहीं जहाँ जल तत्त्व, जहाँ सरस् तत्त्व, जहाँ सरस्वती तत्त्व।

इन शब्दों से रस की निष्पत्ति या अर्थ का उद्घाटन करते थे ऋषि। गत्यर्थक ऋष् धातु से ऋषि शब्द बना है। कहा गया है–

'ऋषि दर्शनात्' अर्थात् ऋत को प्राप्त करने वाले ऋषि, ऋत को बढ़ावा देने वाले। अब उदाहरण देखिए–

भरणाद् भारद्वाजः (निरुक्त)। यह भरण क्रिया होती थी योग से, कृषि से गृहस्थ ऋषि ही तो भरद्वाज थे। हमने देखा कि ऋषि बना है 'ऋष्' से जिसका अर्थ है जाना, पहुँचाना। रोचक है कि रशीद का अर्थ भी है–राह दिखाने वाला। इसी तरह मुर्शीद का अर्थ है- गुरु। आइए अब मूल प्रश्न पर विचार करते हैं–

ब्रह्मा की पत्नी हैं सरस्वती। कभी कहा जाता है कि ब्रह्मा की पुत्री हैं सरस्वती। पहले ब्रह्मा की पत्नी सरस्वती को समझते हैं। इसका भाषा-वैज्ञानिक अर्थ क्या है? पुराणों में भी सरस्वती के बारे में भिन्न-भिन्न मत मिलते हैं। 'सरस्वती पुराण' और 'मत्स्य पुराण' में सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा का सरस्वती से विवाह करने का प्रसंग है जिसके फलस्वरूप इस धरती के प्रथम मानव 'मनु' का जन्म हुआ। इसका प्रतीकात्मक अर्थ क्या है?? इसका अर्थ है– सृष्टि के आदि कारण, जगत्कारण से रसात्मक तत्त्व का जुड़ना, प्रातिभ तत्त्व का जुड़ना। तभी तो सृष्टि की विस्तृति होगी। तो ब्रह्मा का विवाह होता है सरस्वती से। यहाँ 'विवाह' का अर्थ क्या है? क्या यह शादी है या भौतिक विवाह है?

नहीं, यह भौतिक विवाह नहीं है। यह है–'विशिष्ट वहनम्।' यहाँ ब्रह्मा सरस्वती तत्त्व का विशेष-वहन करते हैं। इस विवाह की फलश्रुति हैं आदि मनु। ऐसा कह सकते हैं कि इस विवाह या विशिष्ट वहन से मनु या मन वाला मनु, मनुज या मनुष्य जन्म लेता है। अब इस गहन स्थापना को नहीं जानने-समझने से किस तरह प्रचलित समाज में यह भ्रांत धारणा फैली कि ब्रह्मा ने उनकी पुत्री सरस्वती के साथ विवाह किया था इसलिए उन्हें नहीं पूजा जाता– यह भी देखना रोचक होगा और तदनंतर इस भ्रांति को निर्मूल करने के लिए शोध आधारित पुनर्विचार कर सकते हैं।

सबसे पहले इसे प्रचारित किया गया कि हिंदू धर्म में ब्रह्मा की पूजा नहीं की जाती। उदाहरण दिया गया कि पूरे भारत में सिर्फ एक ही मंदिर है ब्रह्मा का, पुष्कर में। इसके बाद इसका लज्जास्पद कारण रखा गया। कहा गया कि उन्होंने अपनी बेटी से विवाह किया था। इस कहानी को प्रचारित करने के लिए भागवत का यह श्लोक दिया गयाः-

वाचं दुहितरं तन्वीं स्वयंभूर्हतीं मनः।
अकामां चकमे क्षत्त्: सकाम् इति नः श्रुतम् ॥

(श्रीमदभागवत् 3/12/28)

इसका मतलब कहा गया 'ब्रह्मा अपनी युवा बेटी पर मोहित हो गए. बेटी युवा हो गई थी. लेकिन उस पर काम वासना का प्रभाव नहीं हुआ था। फिर भी ब्रह्मा उस पर मोहित हो गए। ऐसा सुना जाता है।'

यह भी कहा गया कि इसी कारण भारतीय पौराणिक इतिहास में ब्रह्मा का नाम महत्वपूर्ण रूप से प्रकट होता है, जबकि आगे प्रचलित समाज में विष्णु और शिव को उनसे श्रेष्ठ माना गया। इसके अतिरिक्त एक जगह और ऐसा ही लिखा आता है, जिसका प्रयोग लोग ब्रह्मा को अपूज्य बताने के लिए करते हैं-

प्रजापतिवै स्वां दुहितरमभ्यधावत्
दिवमित्यन्य आहुरुषसमितन्ये
तां रिश्यो भूत्वा रोहितं भूतामभ्यैत्
तं देवा अपश्यन्

'अकृतं वै प्रजापतिः करोति' इति
ते तमैच्छन् य एनमारिष्यति
तेषां या घोरतमास्तन्व् आस्ता एकधा समभरन्
ताः संभृता एष् देवोभवत्
तं देवा अब्रुवन्
अयं वै प्रजापतिः अकृतं अकः
इमं विध्य इति स् तथेत्यब्रवीत्
तं अभ्यायत्य् अविध्यत्
स विद्ध ऊर्ध्व् उदप्रपतत्
(एतरेय् ब्राहम्ण् 3/333)

पिता यस्त्वां दुहितरमधिष्केन् क्ष्मया रेतः संजग्मानो निषिंचन् ।
स्वाध्योऽजनयन् ब्रह्म देवा वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन्॥
(ऋगवेद -10/61/7)

'प्रजापति दौड़ा अपनी बेटी की ओर दौड़ा। उस लाल लड़की के पीछे भागा। देवताओं ने देखा। कहा कि ये प्रजापति तो न करने योग्य काम कर रहा है। तब उन्होंने एक समूह बना दिया। उस समूह से कहा कि यह प्रजापति न करने योग्य काम कर रहा है। मार दें इसे? उस समूह ने तथास्तु कहकर प्रजापति को एक बाण मारा। प्रजापति घायल हो कर वहीं गिर गया। इस श्लोक का हर जगह प्रयोग किया जाता है ब्रह्मा को अपमानित करने के लिए। दुःखद यह है कि स्वयं सनातनी इसकी गहराई में नहीं उतरते। इसमें कहा गया है कि प्रजापति लाल रंग की लड़की की ओर दौड़ा; किन्तु विचारणीय है कि कौन है यह लाल लड़की? यह प्रजापति है कौन? क्या ब्रह्मा हैं या प्रजापति का दूसरा अर्थ भी है? इसका उत्तर अथर्ववेद में मिलता है। इसमें यह मंत्र है जिसका अर्थ है कि सभा और समिति ये दो प्रजापति की दुहिता या बेटियाँ हैं। सभा अर्थात् ग्रामसभा और समिति अर्थात् प्रतिनिधि सभा। प्रजा को पालने के दायित्व के कारण राजा को प्रजापति अथवा प्रजापिता कह गया। मंत्र देखिए–

'सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितौ संविदाने।
येना संगच्छा उप मा स शिक्षात् चारु वदानि पितरः संगतेषु।'

इन सभाओं के सभासद राजा के लिये पिता की तरह हैं। और राजा को उनकी पूजा करनी चाहिए, उनसे मंत्रणा करना चाहिए। राजा अर्थात् प्रजापति की दायित्व है कि वह अपनी बेटी समान सभा और समिति का पूरा ध्यान रखे, किन्तु ध्यान रखने के साथ वह उन पर अधिकार नहीं जता सकता। प्रतिनिधि सभा के सभासद राजा चुनने का काम करते हैं।

अब जाकर उस मंत्र का वास्तविक अर्थ समुद्घाटित होता है जिसके आधार पर ब्रह्मा को बदनाम करने की कोशिश की गई। उसका अर्थ है कि राजा यानि प्रजापति ने अपनी बेटी यानि प्रजा पर हमला कर दिया। प्रजा ने छेड़ दी क्रांति। राजा की हार हो गई। फ़िर बड़े-बूढ़ों ने उस राजा को हटा दिया और दूसरा राजा चुना। सीधा सा अर्थ यकि राजा ने प्रजा से ग़लत आचरण या हिंसात्मक आचरण (बलात्कार शब्द का मूल अर्थ बल पूर्वक कार्य) किया उसका उसे दंड मिला।

वस्तुतः वैदिक काल में राजा को प्रजापति कहा जाता था। सभा और समिति को प्रजापति की दुहिता यानि बेटियों जैसा माना जाता था। 'ब्रह्मा' को 'प्रजापति' भी कहा जाता है। इस कारण ही या तो भ्रम की स्थिति उत्पन्न हुई या जानबूझकर इसे भिन्न संदर्भ में प्रचारित किया गया। यहाँ अन्तर्पाठीय विधि से शास्त्रों की अवगाहना करें, तो स्थिति स्पष्ट होती है। सबसे पहली बात यह कि जिस तरह ज्ञान या विद्याएं दो हैं 'अपरा' और 'परा'; उसी तरह सरस्वती (ज्ञान तत्त्व) भी दो हैं। मुण्डकोपनिषद् इन दो विद्याओं की चर्चा करता है। इनमें 'परा' विद्या की सृष्टि ब्रह्माजी से हुई अर्थात् वे ब्रह्माजी की एक तरह से पुत्री हुईं। इस रूप का विवाह विष्णुजी से हुआ है, वे मोक्ष के मार्ग को प्रशस्त करने वाली देवी हैं और रक्तवर्णी यानी लाल रंग की हैं।

प्रतीकों में ब्रह्माजी की पत्नी जो सरस्वती हैं, वे 'अपरा' विद्या की अधिष्ठात्री देवी हैं और श्वेत-वर्णा हैं और उन्हें शारदा, शतरूपा, वाणी, वाग्देवी, वागेश्वरी और भारती भी कहा जाता है। संगीत की उत्पत्ति करने के कारण वह संगीत की देवी भी हैं। हमने ऊपर इस पर विचार किया था कि किस तरह शब्द में रस की निष्पति से यह जुड़ा हुआ है। इनके बारे में यह भी एक पौराणिक उल्लेख मिलता है कि महालक्ष्मी (लक्ष्मी नहीं) से जो उनका सत्व प्रधान रूप उत्पन्न हुआ, देवी का वही रूप 'सरस्वती' कहलाया। यहाँ सत्व शब्द आया ही क्यों? इसका उत्तर अन्यत्र एक स्थान पर मिलता है जो विचारणीय है। यह लिखा मिलता है और जो लोकविदित भी है कि ब्रह्मा ने उन्हें अपने मुख से प्रकट किया था। स्पष्ट है कि मुँह से तो शब्द ही उच्चरित हो सकता है। मुँह से शब्द ही निकलेगा। और इस प्रतीकात्मक अर्थ में सरस्वती ब्रह्मा की पुत्री हुईं।

शब्द अगर रसयुक्त हो सरस्वती तत्त्व के साथ हो, तभी तो प्रभाव होगा। यह रस परम 'ब्रह्म' वाला है। शब्द अगर रस को वहन करे तभी सार्थकता है। शब्द ब्रह्म हैं और सरस्वती रस तो दोनों के मिलन के इस प्रतीकात्मक अर्थ में सरस्वती ब्रह्मा की पुत्री हुईं। इस तरह हम देखते हैं कि किस तरह शब्दों और मंत्रों को सही प्रकार न समझ पाने या दुर्भवनावश अन्यथा प्रचारित करने से श्रेष्ठ सनातनी स्थापनाओं पर भारी कुठाराघात हुआ है। आवश्यकता है कि सनातनी विद्वज्जन आगे आकर तर्कों एवं प्रमाणों से अपनी मौलिक स्थापनाओं का संरक्षण तथा प्रसारण करें।

संस्कृत ग्रंथों में विज्ञान

डॉ आराधना उपाध्याय

लेखिका शिक्षाविद् एवं छत्तीसगढ़ में संस्कृत की आचार्य हैं।

हमारा देश ऋषियों और मुनियों का देश है तथा हमारे देश की परंपरा भी विज्ञान पर आधारित है। किंतु एक समय में देश विदेश में लोगों में यह धारणा प्रचलित थी की विज्ञान के क्षेत्र में हमारा देश विकसित देश था तथा जो प्रकाश की किरण प्रस्फुटित हुई है वह पश्चिम से हुई उसके पश्चात ही देश एवं विदेश का विकास आरंभ हुआ लोगों का मानना था कि हमारी कोई भी वैज्ञानिक की परंपरा नहीं थी । विज्ञान के क्षेत्र में भारत में अंधकार व्याप्त था। किंतु यह सत्य नहीं है हमारे देश में अनेक वैज्ञानिक जैसे प्रफुल्ल चंद्र राय, बृजेंद्र नाथ, श्री जगदीश चंद्र बसु इत्यादि ने गहन अध्ययन करके यह प्रतिपादित किया कि संस्कृत ग्रंथों में विज्ञान का भंडार व्याप्त है जिसमें अनुसंधान की आवश्यकता संपूर्ण विश्व को है।

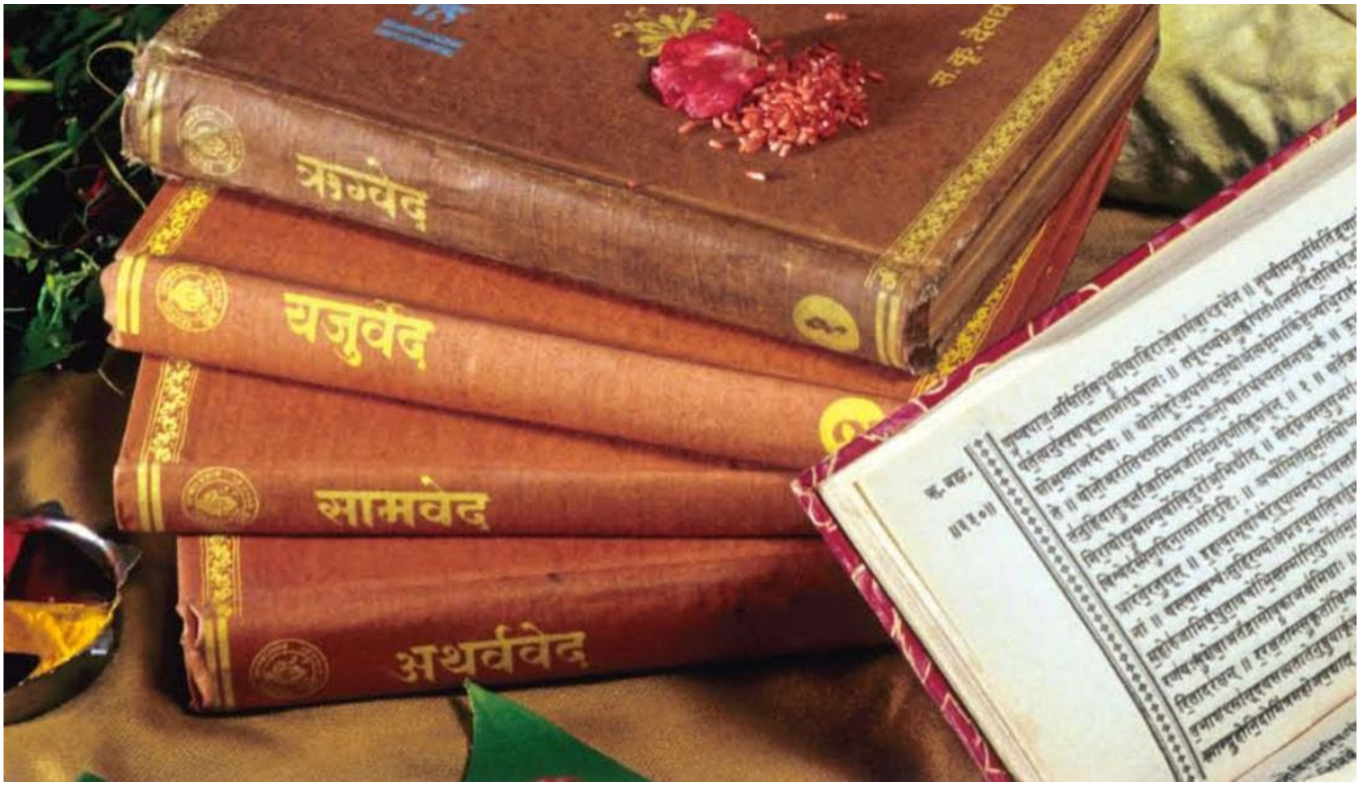

वैज्ञानिक यह भी अनुभव करते थे कि प्राचीन विज्ञान आधुनिक विज्ञान से उन्नत था। संस्कृत ग्रंथों में यह ज्ञात है कि वर्तमान युग में जो आविष्कार होते हैं उनका मूल रूप प्राचीन ग्रंथों में ही था जैसे प्रकाश निस्तारण प्रक्रिया पत्तों के मध्य भाग में स्थित प्लाज्मा ,बीज निर्माण, रेखा गणित, अंक गणित ,वैदिक गणित, आयुर्विज्ञान ,शिल्प विज्ञान, ज्योतिष विज्ञान, शल्य चिकित्सा विज्ञान, परमाणु विज्ञान इत्यादि हमारे देश की प्राचीन वैज्ञानिक आर्यभट्ट ,वाराहमिहिर, आचार्य चरक, महर्षि पराशर, बोधायन, इत्यादि प्रमुख थे जिन्होंने अनेक वैज्ञानिक सिद्धांत प्रतिपादित किए, ब्रिटिश विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने भी यह स्वीकार किया है कि न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत वस्तुतः ऋषि कणाद ने अपने ग्रंथ में पहले से ही प्रतिपादित किया था और वही इस सिद्धांत के प्रणेता थे। वेदों में अथर्ववेद में विज्ञान के उन्नत स्वरूप का वर्णन है । इसमें भी आयुर्विज्ञान, शल्य विज्ञान, जीव विज्ञान, औषध विज्ञान इत्यादि विज्ञानों का उल्लेख है। इस वेद में चिकित्सा संबंधी महत्वपूर्ण ज्ञान निहित है तथा यह पूर्णतः वैज्ञानिक ग्रंथ है। प्राचीन काल में हमारे देश में अनेक ऐसे वैज्ञानिक ऋषि मुनि थे जिन्होंने अनेक वैज्ञानिक सिद्धांतों का निरूपण किया तथा हमारे देश के उन्हीं वैज्ञानिकों के नाम से ही अनेक उपग्रहों के नाम हुए जैसे रोहिणी, आर्यभट्ट, भास्कर, इत्यादि वर्तमान काल में वेदों में, प्राचीन ग्रंथों में उल्लिखित अनेक घटनाएं जिनको हम सभी लोग कल्पना और चमत्कार कहते हैं वह सब विज्ञान ही था । यह सिद्ध हो गया है कि प्राचीन काल में वायु यान पारे की सहायता से चलते थे। प्राचीन विमान विद्या अत्यंत विकसित थी रामायण में रावण के पुष्पक विमान का संचरण विज्ञान का अद्वितीय उदाहरण है । 21वीं सदी में अमेरिका मे नासा अनुसंधान केंद्र में भी महर्षि भारद्वाज द्वारा लिखित 'विमान शास्त्र' इस ग्रंथ की सहायता ली गई उसी समय वह वैज्ञानिक विमान के स्वरूप को छोटा अथवा बड़ा करने में समर्थ थे। परमाणु अस्त्रों का प्रयोग रामायण महाभारत आदि ग्रंथों में हम पढ़ते हैं। इन्हें पढ़कर यह ज्ञात होता है कि प्राचीन विज्ञान में ना केवल आणविक अस्त्रों का प्रक्षेपण अपितु उनके संहरण का भी ज्ञान था ।प्राचीन काल की गणना का आधार भी पूर्णतः वैज्ञानिक था लोग काल गणना के लिए घड़ी के समान यंत्र को बना करके उसका प्रयोग करते थे यदि वर्तमान वैज्ञानिक संस्कृत ग्रंथों का अनुसंधान करेंगे तो निश्चय ही जापान देश में घटित हुई हिरोशिमा नागासाकी इस प्रकार की घटनाओं की पुनरावृत्ति नहीं होगी क्योंकि वैज्ञानिक आणविक अस्त्रों को रोकने में भी समर्थ होंगे। डॉ मुरली मनोहर जोशी ने अपने लेख और व्याख्यान में प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक परंपरा प्रस्तुत की वैज्ञानिकएम पी राव ने अपनी पुस्तक में विमान शास्त्र श्री पी सी डोगरे इत्यादि ने अनेक संस्थान और प्राचीन ग्रंथों ने वैज्ञानिक तथ्य का संकलन करके समाज के समक्ष वर्णन किया अतः हम यह कहने में समर्थ है कि हमारा प्राचीन विज्ञान अत्यंत उत्कृष्ट मानवीय और मूल्य युक्त था वह विज्ञान सभी के हित और सभी के सुख के लिए था ।

सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय

इस कारण से ही भारतीय सभ्यता का मूल मंत्र भी यह है

सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः ।

सर्वे भद्राणि पश्यंतु मां कश्चित्दुख भाग भवेत्।।

भारतीय संस्कृति का अनोखा स्वरुप

संस्कृति किसी भी देश, जाति और समुदाय की आत्मा होती है। संस्कृति से ही देश, जाति या समुदाय के उन समस्त संस्कारों का बोध होता है जिनके सहारे वह अपने आदर्शों, जीवन मूल्यों आदि का निर्धारण करता है। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों एवं सभ्यताओं में से एक है जिसमें बहुरंगी विविधता और समृद्ध सांस्कृतिक विरासत है।

डॉ. अर्चना पाठ्या

भारत की विभिन्न कलाओं, जैसे- मूर्तिकला, नृत्यकला, चित्रकला, लोकसंस्कृति इत्यादि में भारतीय संस्कृति के समन्वित स्वरूप को देखा जा सकता है। भारतीय संस्कृति का समन्वित रूप केवल भौगोलिक-राजनीतिक सीमाओं में ही नहीं है बल्कि उसके बाहर भी है। सनातन धर्म को मानने वाले लोग पूरे विश्व के लगभग सभी भागों में फैले हुए हैं। सनातन धर्म विश्व का एकमात्र ऐसा धर्म है जो बिना प्रचार प्रसार के ही फैल रहा है, जिसे विश्व के लोग प्रेम से अपना रहे है।

लेखिका शिक्षाविद् और महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा से सम्बद्ध है।

भारतीय संस्कृति समस्त मानव जाति का कल्याण चाहती है, इसमें प्राचीन गौरवशाली मान्यताओं एवं परंपराओं के साथ ही नवीनता का समावेश भी दिखाई देता है जिसमें विभिन्न सांस्कृतिक धाराओं का महासंगम है, सनातन संस्कृति से लेकर आदिवासी, तिब्बत, मंगोल, द्रविड़, हड़प्पाई और यूरोपीय धाराएँ समाहित हैं। ये धाराएँ भारतीय संस्कृति को इंद्रधनुषीय संस्कृति या गंगा-जमुनी तहज़ीब में परिवर्तित करती है। अगर भारतीय संस्कृति के समन्वित रूप पर विचार करें तो इसमें विभिन्न विशेषताएँ देखने को मिलती हैं। इसमें अध्यात्म एवं भौतिकता' में समन्वय नजर आता है। भारतीय संस्कृति में प्राचीनकाल में मनुष्य के चार पुरूषार्थों धर्म, अर्ध, काम, मोक्ष एवं चार आश्रमों- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास का उल्लेख है, जो आध्यात्मिकता एवं भौतिक पक्ष में समन्वय लाने का प्रयास है जिसने अनेक जातियों के श्रेष्ठ विचारों को अपने में समेट लिया है और यहां के मूल निवासियों के समन्वय की प्रक्रिया के साथ ही बाहर से आने वाले शक, हूण, यूनानी एवं कुषाण भी यहां की संस्कृति में घुल-मिल गए हैं। अरबों, तुर्कों और मुगलों के माध्यम से यहाँ इस्लामी संस्कृति का आगमन हुआ। इसके बावजूद भारतीय संस्कृति ने अपना पृथक अस्तित्व बनाए रखा और नवागत संस्कृतियों की अच्छी बातों को उदारतापूर्वक ग्रहण किया। आज हम भाषा, खानपान, पहनावे, कला, संगीत आदि हर तरह से गंगा-जमुनी तहजीब या यूँ कहें कि वैश्विक संस्कृति के नमूने हैं। कौन कहेगा कि सलवार-सूट ईरानी पहनावा है या हलवा, कबाब, पराठे, 'शुद्ध भारतीय व्यंजन नहीं हैं। भारत एक विविध संस्कृति वाला देश है, भारतीय सनातन धर्म का गौरवशाली इतिहास विश्व में सबसे पुराना माना जाता है। कहते हैं कि लगभग 14,000 विक्रम सम्वत् पूर्व भगवान नीलवराह ने अवतार लिया था। नीलवराह काल के बाद आदिवराह काल और फिर श्वेत वराह काल हुए। इस काल में भगवान वराह ने धरती पर से जल को हटाया और उसे इंसानों के रहने लायक बनाया था। उसके बाद ब्रह्मा ने इंसानों की जाति का विस्तार किया और शिव ने सम्पूर्ण धरती पर धर्म और न्याय का राज्य क़ायम किया। सभ्यता की शुरुआत यहीं से मानी जाती है।

भारतीय संस्कृति के बारे में पं. मदनमोहन मालवीय का कहना है कि ''भारतीय सभ्यता और संस्कृति की विशालता और उसकी महत्ता तो संपूर्ण मानव के साथ तादात्म्य संबंध स्थापित करने अर्थात् 'वसुधैव कुटुंबकम्' की पवित्र भावना में निहत है।' चाहे कोई खुशी का अवसर हो या कोई दुख का क्षण, एक साथ खुशी या दर्द का अनुभव करते हैं।

हड़प्पाकालीन सभ्यता की पंरपराएँ एवं प्रथाएँ आज भी भारतीय संस्कृति में देखने को मिल जाती है। इसके अलावा भारतीय संस्कृति में 'प्रकृति मानव सहसंबंध' पर बल दिया गया है। हमारी संस्कृति मानव, प्रकृति और पर्यावरण के अटूट एवं साहचर्य संबंधों को लेकर चलती है। भारतीय उपनिषदों में 'ईशावास्यइंद सर्वम्' अर्थात् जगत् के कण-कण में ईश्वर की व्याप्तता को स्वीकार किया गया है। यहाँ के विभिन्न विचारकों एवं महापुरूषो ने भारतीय संस्कृति को समन्वित रूप प्रदान करने वाले विचार प्रस्तुत किये हैं। फिर चाहे बुद्ध, तुलसीदास हो या गांधी, इन सभी को भारतीय संस्कृति के नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। भारत की विभिन्न कलाओं, जैसे- मूर्तिकला, नृत्यकला, चित्रकला, लोकसंस्कृति इत्यादि में भारतीय संस्कृति के समन्वित स्वरूप को देखा जा सकता है। भारतीय संस्कृति का समन्वित रूप केवल भौगोलिक-राजनीतिक सीमाओं में ही नहीं है बल्कि उसके बाहर भी है। सनातन धर्म को मानने वाले लोग पूरे विश्व के लगभग सभी भागों में फैले हुए हैं। सनातन धर्म विश्व का एकमात्र ऐसा धर्म है जो बिना प्रचार प्रसार के ही फैल रहा है, जिसे विश्व के लोग प्रेम से अपना रहे है। हिन्दू धर्म को अपनाने का मुख्य कारण है इसका वैदिक ज्ञान जो 'वसुधैव कुटुम्बकम्', 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की बात करता है, इसके धर्मग्रंथों यथा वेद और श्रीमद्भगवद्गीता का ज्ञान जो निष्काम कर्म और आत्मा परमात्मा का ज्ञान प्रदान करता है। सनातन धर्म की विचारधारा को, आज जीवन की सुखमय प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए, एक प्रेरणा दृष्टि के तौर पर देखा जा रहा है और इसे विश्व में शांति और सदभावना स्थापित करने के लिए एक आवश्यक घटक माना जा रहा है।

भारतीय धर्म व संस्कृति विश्व की प्राचीनतम, आदिकालीन, सर्वोत्कृष्ट, ईश्वरीय ज्ञान वेद और सत्य मान्यताओं व सिद्धान्तों पर आधारित है। सारे विश्व में यही संस्कृति महाभारत काल व उसकी कई शताब्दियों बाद तक भी प्रवृत्त रहने सहित सर्वत्र फलती-फूलती रही है। इस संस्कृति की विशेषता का प्रमुख कारण यह था कि यह ईश्वरीय ज्ञान वेद पर आधारित होने के साथ वेदों के प्रचारक व रक्षक ईश्वर के साक्षात्कृत धर्मा हमारे ऋषि मुनियों द्वारा प्रचारित व संरक्षित थी। महाभारत के विनाशकारी युद्ध के प्रभाव से ऋषि परम्परा समाप्त हो गई जिससे संसार में धर्म व संस्कृति सहित शिक्षा के क्षेत्र में घोर अन्धकार छा गया। यह अन्धकार समाप्त नहीं हो रहा था अपितु समय के साथ बढ़ रहा था। इस स्थिति में हम देखते हैं कि देश-देशान्तर में कुछ महापुरुषों का जन्म हुआ जिन्होंने समाज को नई दिशा देने के लिए सामयिक ज्ञान की अपनी योग्यतानुसार अपने मत व धर्म प्रचलित किये। बदलते वैज्ञानिक युग में शनैः-शनैः हमारी संस्कृति का स्वरूप बदलता जा रहा है। गाँव नगरों में बदल रहे हैं, नये-नये कल कारखाने, उद्योग, मिलें, फैक्ट्रियाँ स्थापित किए जा रहे हैं। वैज्ञानिक तकनीकों से बेमौसम कृत्रिम फसलें, फल आदि उगाए और पकाए जाने लगे हैं। पाश्चात्य आधुनिक संस्कृति प्राचीन भारतीय

संस्कृति के मूल रूप को बदल रही है। भारत विकास कर रहा है। यहाँ विभिन्न प्रकार के वैज्ञानिक उपकरण ऊँची-ऊँची इमारतें, बड़े-बड़े उद्योग ग्रामीण संस्कृति में प्रयुक्त छोटे-छोटे उपकरणों (खुरपी, कुदाल, हल), सनई से बने झोपड़ियों और हस्तशिल्प के छोटे-छोटे उद्योगों को विस्थापित कर रहे हैं। लोक गीतों के स्थान पर पाश्चात्य पॉप गायन, लोग नृत्य के स्थान पर डीजे का प्रचलन बढ़ गया है। बैलगाड़ी, घोड़ागाड़ी या साइकिल इनका स्थान पेट्रोल और डीजल से चलने वाली तेज रफ्तार गाड़ियों ने ले लिया है। यह विकास जिसने हमारी संस्कृति को प्रभावित किया है, हमारे पर्यावरण को भी प्रभावित कर रहा है। भारतीय संस्कृति और पर्यावरण परस्पर आश्रित हैं। यहाँ का किसान ऋतुओं के अनुसार फसलें बोता, उगाता और काटता है। प्रकृति में रची बसी यह लोक संस्कृति धीरे-धीरे विलुप्त हो रही है। हम प्रकृति से कोसों दूर ईंट पत्थरों की दुनिया में प्रवेश कर गये हैं। आधुनिक समाज प्रकृति से प्रेम नहीं, उसका दोहन करना जानता है। कम्प्यूटर युग कहे जाने वाले आज के समय में हमारी संस्कृति प्राकृतिक से कृत्रिम हो गई है। विकास की दौड़ में हम पर्यावरण को शुद्ध रचाने वाली भारतीय संस्कृति के क्रियाकलापों (हवन, यज्ञादि) से हटकर प्रकृति को दूषित करने वाली संस्कृति को अपना रहे हैं। जबकि सनातन परम्पराओं में प्रकृति संरक्षण के सूत्र मौजूद हैं।

हिन्दू धर्म में प्रकृति पूजन को प्रकृति संरक्षण के तौर पर मान्यता है। भारत में पेड़-पौधों, नदी-पर्वत, ग्रह-नक्षत्र, अग्नि-वायु सहित प्रकृति के विभिन्न रूपों के साथ मानवीय रिश्ते जोड़े गए हैं। पेड़ की तुलना संतान से की गई है तो नदी को मां स्वरूप माना गया है। दुनिया के पर्यावरण विज्ञानी भले आज पर्यावरण संरक्षण की ओर लोगों को चेता रहे हों, लेकिन हमारे मनीषियों को तो हजारों-हजार साल पहले आभास था कि पर्यावरण के साथ खिलवाड़ के क्या भयावह परिणाम हो सकते हैं? भारत की सनातन संस्कृति जो वेदों से विकसित हुई, उन वैदिक ऋचाओं का मूल कथ्य ही प्रकृति के साथ सन्तुलन से जुड़ा है। वैदिक ज्ञान, किसी धर्म अथवा सम्प्रदाय से परे वह जीवन शैली है, जो सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण का रास्ता दिखाती है। हकीकत तो ये है कि वेदों में पंच महाभूतों को ही देवतुल्य स्थान दिया गया है और इन्हीं को सन्तुलित करना चराचर जगत के लिए कल्याणकारी बताया गया है। ईश्वर के साकार रूप से परे वेदों में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और क्षितिज ये ही हमारे उपास्य रहे हैं। बह्मा सृजन के, शिव त्याग के, विष्णु संयम के, देवी भगवती पराक्रम की और बजरंगबली साहस के प्रतीक हैं। ये बात अलग है कि इन्सान ने अपने क्षुद्र सुखों के लिए उनके संदेश को ग्रहण न करके, उन्हें मनोकामना पूर्ति के लिए आराध्य तो बना दिया, लेकिन उनके मार्ग का अनुसरण नही किया। पर्यावरण प्रदूषण की समस्या आज इन्हीं पंचमहाभूतों की उपेक्षा एवं असन्तुलन का कारण है।, वहीं भगवान कृष्ण ने श्रीमद्भगवतगीता में तीन तत्व और सम्मिलित किये- जिसे मन, बुद्धि एवं अहंकार नाम दिया गया। ये तीन तत्व हमारे मानसिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक प्रदूषण को प्रभावित करते हैं।

सनातन संस्कृति में किसी भी मांगलिक कार्य से पहले कलश स्थापन का विधान है। कलश वस्तुतः हमारे ब्रह्माण्ड का प्रतीक है कलश में सभी देवताओं की प्राण प्रतिष्ठा कर एक प्रकार से प्रकृति को ही नमन करते हैं। वायु को वेदों में प्राण कहा गया है, इसी वायु को शुद्धीकरण के लिए जहां सनातन संस्कृति में होम -यज्ञ की विधि बताई है, वहीं प्राणवायु के मूल स्रोत वनस्पतियों के संरक्षण की बात कही गई है । विज्ञान तो पेड़- पौधों में जीवन की बात आज करता है हमारे मनीषी आदि काल से इन्हें सजीव मानकर चले हैं । वृक्ष को काटना पाप मानकर इसे निषिद्ध ठहराया गया है । सबसे उपयोगी वृक्ष पीपल, बरगद व बेल के पेड़ को काटना महापाप कहा गया है, भगवान श्रीकृष्ण ने तो श्रीमद्भगवतगीता में संसार में अपनी व्यापकता को बताते हुए, यहां तक कह डाला कि वृक्षों में पीपल वृक्ष मैं हूँ इस प्रकार मानवोपयोगी विभिन्न वनस्पतियों में ईश्वर का वास बताकर उनके संरक्षण की ओर ईशारा किया गया है । अग्नि पुराण तो यहां तक कहता है- 'यदि कोई व्यक्ति अपने वंश का विस्तार एवं धन और सुख में वृद्धि की कामना करता है, तो वह फल -फूल वाले वृक्ष को न काटे।'' इसी प्रकार पीपल की टहनी तक को सन्तान वाले व्यक्ति को तोड़ना वर्जित कहा गया है। सनातन धर्म में किसी की मृत्यु होने पर मृतक की याद में पीपल के वृक्ष रोपने की परम्परा है, यह एक प्रकार से मृत व्यक्ति द्वारा अपने जीवनकाल में प्रकृति से ली गयी प्राणवायु का कर्ज चुकाने का एक उपक्रम माना जा सकता है। जल की महत्ता को प्रतिपादित करने के लिए हमारे मनीषियों ने नदियों को विशेष सम्मान दिया है, इसे जनास्था से जोड़ने के लिए कुम्भ, अर्द्ध कुम्भ पर्वो व गंगा को मां का दर्जा दिया है। ये बात अलग है कि गंगा मां के प्रति आस्था में कमी आज भी नहीं आई, लेकिन हम यह भूल गये कि गंगा प्रदूषित होगी तो उससे पुण्य की बात तो दूर, प्रदूषित गंगा में स्नान से उल्टा रोगों को आमंत्रित करेंगे।

भारतीय सनातन संस्कृति पर्यावरण और प्रकृति की हमेशा से ही पूजक रही है। रामायण में श्रीराम एवं सीता के द्वारा गंगा,यमुना एवं वट वृक्ष की पूजा वर्णित है। बैसाखी,मकर संक्रांति, बसंत पंचमी,लोहड़ी, गोवर्धन पूजा आदि अनेकों पर्व उत्सव ऐसे हैं,जो सीधे प्रकृति से जुड़े हैं। छठ पर्व पर सूर्य पूजन, करवा चौथ पर चंद्रमा पूजन,अहोई अष्टमी पर तारों का पूजन, वट सावित्री व्रत में वट वृक्ष पूजन, पीपल पूजन, तुलसी

विवाह और पूजन, आंवला नवमी पूजन, गाय पूजन, नाग पंचमी आदि का प्रकृति और पर्यावरण के अनेकों रूपों में पूजन और वंदन की परंपरा है। वेदों से लेकर कालिदास, दाण्डी, पंत, प्रसाद आदि तक सभी के काव्य में इसका व्यापक वर्णन किया गया है। विकास की चाहत ने प्रकृति को पूरी तरह से खतरे में डाल दिया है। भारतीय ऋषि-मुनियों ने सनातन संस्कृति को विश्व कल्याण के लिए सम्पूर्ण वैज्ञानिक आधार पर घडा था किसी जाति धर्म का कोई भेदभाव नहीं था। बाद में आक्रांताओं ने लोगों में इतनी घृणा भर दी कि मानव को मानव का जाति व धर्म के नाम पर शत्रु बना डाला।

आज लग रहा है कि पूरा विश्व एक परिवार है। जो भारतीय संस्कृति का शब्द वसुधैव कुटुंबकम साक्षात चरितार्थ होता नजर आ रहा है उसका कारण है एक छोटा सा अदृश्य जीवाणु। वह भी प्रकृति का हिस्सा है। उस प्रकृति के हिस्से ने आज जो कोहराम मचाया है, यह प्रकृति का एक चमत्कार कह लो या उसका एक रूप कह लो। महाबुद्धिमान, महाबली, विकसित, विकासशील, अत्याधुनिक तकनीकों से परिपूर्ण, पूरे ब्रह्माण्ड का ज्ञान रखने वाले मानव को एक सूक्ष्म से परजीवी ने घुटनो पर ला दिया ? या यूं कहें कि एक झटके में सारा अहंकार तोड दिया। कुछ भी काम नही आ रहा है ना एटम बम काम आ रहे न पेट्रो रिफाइनारी ? आपका सारा विकास एक छोटे से जीवाणु से सामना नहीं कर पा रहा एक छोटे से जीव ने घरो में बंदी बना दिया ? आज छोटे से कोविड 19 जीवाणु ने सबको समझा दिया कि समस्त विश्व हमारा परिवार है। पूरे पृथ्वी के जीवों की रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य है, धर्म है। आज पूरा विश्व कोरोना महामारी के संकट से जूझ रहा है। कोरोना ने पूरे विश्व में तबाही मचा रखी है। पश्चिमी जीवनशैली कोरोना महामारी से बचाने में ना केवल असफल रही है उल्टा पश्चिमी जीवनशैली कोरोना वायरस को फैलाने में मददगार सिद्ध हुई है। कोरोना वायरस से बचने के लिए वैज्ञानिकों और डॉक्टरों ने जो सावधानी रखने की बात कही, जो सफाई रखने की बात कही, वो तो सनातन संस्कृति में परम्पराएं के रूप में सदियों से चली आ रही हैं- आधुनिक विश्व इतिहास में सम्भवतः यह दूसरा अवसर है जब स्वस्थ रहने के लिये दुनिया भारत के 'योग' को अपनाने के बाद अब कोरोना के कहर से बचने के लिये हमारी सनातन अभिवादन परम्परा 'नमस्कार' के महत्व को स्वीकार कर रही है। भारत की सनातन जीवन-पद्धति में सौ साल तक स्वस्थ व सक्रिय जीवन जीने की आकांक्षा है। जीवेत शरदः शतम।

कुण्ठा से ग्रसित और मजबूरी में सनातन परम्परा की वाहक आज की युवा पीढ़ी को कोरोना वायरस के प्रकोप ने एक बार फिर से अपने गौरवशाली अतीत में गम्भीरता से झांकने का अवसर प्रदान किया है। मानवता के विनाश के, पृथ्वी के जीवो के विनाश के सारे साधन इस पृथ्वी पर मानव द्वारा तैयार किए जा रहे थे। कुछ लोग, कुछ देश हथियारों के व्यापार पर उतर आए थे। केवल भयादोहन करके, एक दूसरे को डराकर, हथियार बेचने से अर्थव्यवस्था चला रहे है। केवल हत्यारों के बल पर विश्व विजय चाहने वाले देशों के लिए यह एक चुनौती है। प्रकृति ने उनके गाल पर एक करारा तमाचा जड़ दिया है, जो यह बताने के लिए पर्याप्त है कि केवल हथियार ही सब कुछ नहीं है। वरन प्रकृति का सम्मान, मानवीय मूल्यों का सम्मान करना अत्यंत आवश्यक है। यह सोचने की बात है कि इसका उपचार कहां लिखा ?? भारतीय लोक संस्कृति आधुनिक उपभोक्तावादी संस्कृति में परिवर्तित होकर पर्यावरण प्रदूषण का कारण बन गई है। कामायनी जैसा महाकाव्य लिखकर कवि जयशंकर प्रसाद ने मानव संस्कृति को पर्यावरणीय असंतुलन के प्रलयंकारी दुष्परिणामों के प्रति बार-बार सचेत किया है- यदि हम इसी प्रकार प्रकृति का दोहन करते रहे तो एक दिन देव संस्कृति की भाँति यह मानव संस्कृति भी प्रकृति के कोप का भाजन बन जाएगी । अतः हमे उस अपसंस्कृति से बचना होगा जो प्रकृति का दोहन करना जानती है और उस भारतीय संस्कृति को विलुप्त होने से बचाना होगा जिसमें प्रकृति प्रेम कूट-कूट कर भरा है। यह तभी संभव है प्रकृति के साथ होने वाले खिलवाड़ को बंद कर जब हम अपने पर्यावरण को स्वच्छ और संतुलित रखें।अब जरूरत है कि हम अपनी इस सांस्कृतिक धरोहर को जानें और इस पर गर्व करना भी सीखें। सनातन संस्कृति में प्रकृति संरक्षण के तत्व एवं भारतीय संस्कृति में निहित है। समझने की बात है। मानवता के हित में आज भी वापसी की आवश्यकता है। मानवाधिकार के साथ मानव कर्तव्यों को भूल गये आज उन कर्तव्यों को भी पूरा करना होगा ये ही प्रकृति का सन्देश है। आज जरूरत है कि हम इन मूल्यों और परम्पराओं के पीछे अपने पूर्वजों की वैज्ञानिक सोच को नयी पीढ़ी तक पहुंचायें और इसके महत्व से उसे परिचित कराकर संस्कारों का हिस्सा बनायें। आज पूरे विश्व पर जो संकट है उससे संभालना होगा भारतीय संस्कृति के परम सत्य प्रकृति की ओर लौटना ही होगा। विश्व कोरोना वायरस से जूझ रहा है पर ये भी वास्तविकता है कि विश्व सनातन संस्कृति की ओर आकर्षित हो रहा है। पूरे विश्व में हिन्दू धर्म इतना लोकप्रिय हो रहा है कि लोग अपना धर्म छोड़कर हिन्दू धर्म और हिन्दू जीवनशैली अपना रहे हैं।

संदर्भ

1. प्रसाद, जयशंकर (1993) कामायनी, चिंता सर्ग, पृ. 17।
2. कृष्णदेव, उपाध्याय (2002) भोजपुरी ग्रामगीत, भाग-1, पृ. 334।
3. त्रिपाठी, रामनरेश (1999), ग्रामगीत, पृ. 69।
4. सिंह, परमेश्वर (2001) प्रकृति, मानव एवं पर्यावरण, पृ. 80।

आलेख

सनातन सचेतक भाई जी हनुमान प्रसाद पोद्दार

प्रो.हिमांशु चतुर्वेदी

19वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध भारत के नवोन्मेष का काल था। स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा वेदों की पुनर्स्थापना, वीर सावरकर, डॉक्टर हेडगेवार, महात्मा गांधी, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, बिपिन चंद्र पाल, लाला लाजपत राय, मदन मोहन मालवीय जैसे महापुरुषों का प्रादुर्भाव तथा देशहित में किए गए रचनात्मक कार्यों के पूर्व स्वामी विवेकानंद जी का यह उद्गार कि भारत अब जाग चुका है, उसके सहस्त्रों पुत्र एवं पुत्रियां भारत माता को दुनिया के सर्वोच्च सिंहासन पर आरूढ़ होते हुए देख रहे हैं।

महापुरुषों के जन्म से ही प्रकृति की परीक्षाएं प्रारंभ हो जाती है। स्वर्ण को मूल्यवान बनने के लिए उसे तपना पड़ता है। हीरे को चमकने के लिए हजारों घात-प्रतिघात सहना पड़ता है। चुंबक को चुंबक बनने के लिए लोहे को जलना एवं गलना पड़ता है। प्रकृति जब किसी को निखारती है तो उसकी क्रूर परीक्षाएं भी लेती है। बालक हनुमान प्रसाद के जन्म के 2 माह बाद ही उनके परिवार के संरक्षक दादा जी का देहांत हो गया, जिससे परिवार में एक भारी अवसान का वातावरण बना।

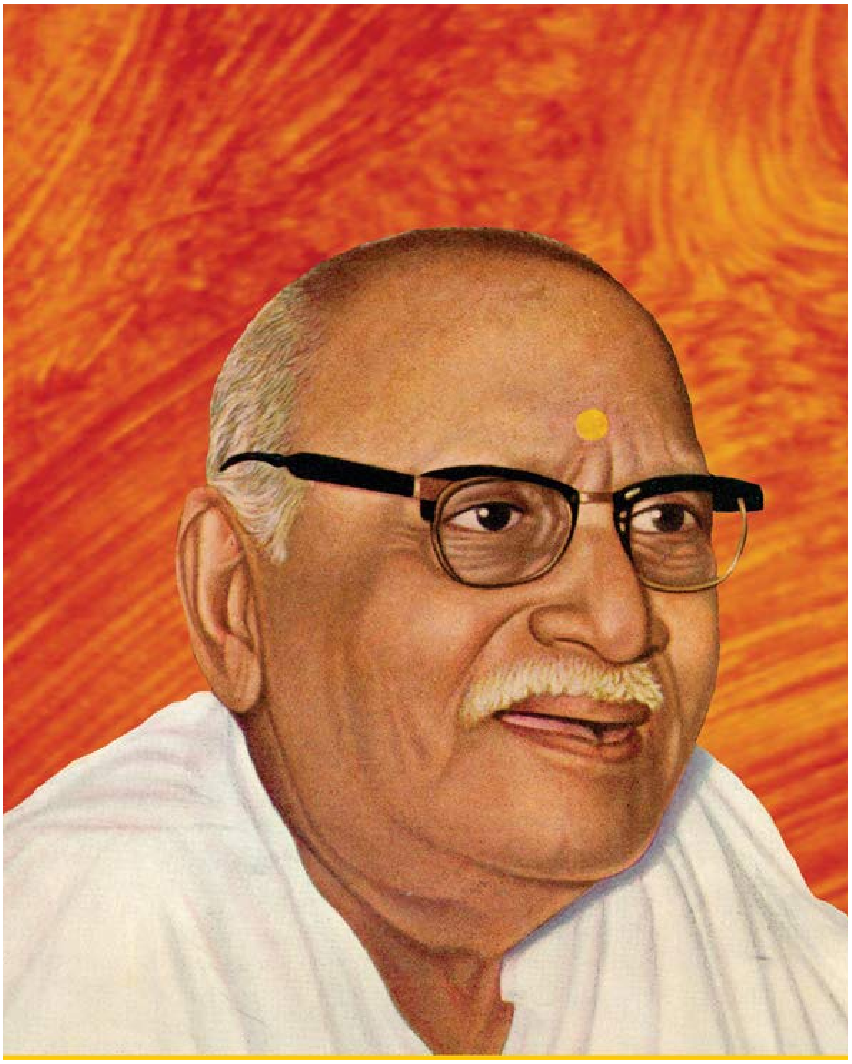

देश स्वतंत्रता के लिए सर्वदूर संघर्षरत था। उस समय 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में रतनगढ़ में नाथपंथ और वैष्णव संप्रदाय का प्रभाव चरम पर था। 16वीं शताब्दी से धार्मिक जागरण अर्थात पुनर्जागरण का प्रभाव संपूर्ण भारत में प्रभावी हो रहा था। तुलसी, कबीर, गोरक्ष, पीपा, धन्ना के अतिरिक्त सिख संप्रदाय और दक्षिण में वैष्णव संप्रदाय के प्रभाव से समाज की सात्विक प्रवृत्तियां धार्मिक आधार पर अपने को इस्लामिक प्रकोप से बचाना चाहती थी। रतनगढ़ के बंसल गोत्र का पोद्दार परिवार भी वैष्णव संतों के प्रभाव में था। वैष्णव सम्प्रदाय के अनेक साधक और संत भी रतनगढ़ में रहने लगे थे। पोद्दार परिवार के श्री भीमराव जी तथा ताराचंद जी वैष्णव संतो के पूर्ण प्रभाव में थे। उनका परिवार भी वैष्णव हो गया था। ताराचंद जी पोद्दार व्यवसाय के सिलसिले में पूर्वोत्तर के शिलांग में बस गए थे। बाद में व्यवसाय में विस्तार होने के कारण उनके पुत्र भीमराव जी भी शिलांग चले गए। इस परिवार के इष्ट देव के रूप में राम भक्त हनुमान जी की मान्यता थी। पूरा घर हनुमान जी की ही उपासना करता था। सात्विक प्रवृत्ति की उनकी दादी जी श्रीमती रामकौर बाई के द्वारा हनुमान जी के आराधना व प्रसाद के स्वरूप 17 सितंबर 1892 को एक तेजस्वी बालक का जन्म माता रिखीबाई के गर्भ से हुआ, परिणाम स्वरूप उस बालक का नाम हनुमान प्रसाद रखा गया। महापुरुषों के जन्म से ही प्रकृति की परीक्षाएं प्रारंभ हो जाती है। स्वर्ण को मूल्यवान बनने के लिए उसे तपना पड़ता है। हीरे को चमकने के लिए हजारों घात-प्रतिघात सहना पड़ता है। चुंबक को चुंबक बनने के लिए लोहे को जलना एवं गलना पड़ता है। प्रकृति जब किसी को निखारती है तो उसकी क्रूर परीक्षाएं भी लेती है। बालक हनुमान प्रसाद के जन्म के 2 माह बाद ही उनके परिवार के संरक्षक दादा जी का देहांत हो गया, जिससे परिवार में एक भारी अवसान का वातावरण बना। अभी बालक 2 वर्ष का ही हुआ था तभी वत्सला माताजी भी बालक हनुमान प्रसाद को अनाथ करके चली गई। अब उनके पालन-पोषण की जिम्मेदारी दादी मां के कंधे पर आ गया। परिवार चलाने के लिए पिताजी ने रामदेवी से विवाह कर लिया। दूसरी मां से बालक हनुमान प्रसाद जी को भरपूर प्यार मिला। शिलांग के जंगलों के सुरम्य वातावरण में सब ठीक चल रहा था, तभी 1858 में पूरे असम में भूकंप का भयंकर प्रकोप हुआ। प्रकृति के इस क्रूर तांडव में अनेकों पेड़ एवं घर ध्वस्त हो गए। हनुमान प्रसाद जी किसी कार्यक्रम में अपने पड़ोस के घर में गए थे। वह घर भी पूरी तरह ध्वस्त हो गया था। किंतु राम भक्त हनुमान की असीम कृपा से घर के भग्नावशेष में 2 शिलाओं के बीच में बालक हनुमान प्रसाद सुरक्षित और संरक्षित थे। भूकंप की विभीषिका ऐसी थी कि वहां का व्यापार मंद पड़ गया और वातावरण रहने के लायक नहीं रह गया। सेठ कनीराम जी का मन जो हनुमान प्रसाद जी के चचेरे दादा थे 1899 में गोलोकवासी हो गए। तब इसके पश्चात सेठ ताराचंद अपने परिवार सहित कलकत्ता आ करके बसने और व्यापार करने का मन बना लिया और शिलांग से कलकत्ता आ गए। लेकिन 6 वर्ष की आयु के हनुमान प्रसाद जी को लेकर उनकी दादी वापस रतनगढ़ आ गई। बाकी परिवार कलकत्ता में स्थापित हो गया। दादी का विचार था कि हनुमान प्रसाद जी बड़े होकर पिता का व्यवसाय संभाले। इसके लिए उनको रतनगढ़ में ही महाजनी पाठशाला जिसे जोरजी पाठशाला कहते थे, उसमें दाखिला दिला दिया गया। पाठशाला में हिंदी, गणित, रोकड़, बहीखाता की पढ़ाई प्रारंभ की। वैष्णव परिवार होने के कारण उन दिनों दादी संत बक्खन दास जी के सत्संग में जाया करती थी। दादी के साथ हनुमान प्रसाद जी भी जाने लगे थे।

सिद्ध संत की दृष्टि बालक हनुमान प्रसाद पर पड़ी। उनको समझते देर न लगी कि आने वाले समय में यह बालक महाभागवत नित्यलीलालीन भाई हनुमान प्रसाद पोद्दार के नाम से विख्यात होगा। संत बक्खन दास जी ने भाई जी को गीता कंठस्थ करने को कहा जिसके कारण भाई जी को संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त हो गया। भगवद्भजन, गोसेवा, हृदय की आद्रता, करुणा, धर्म- कर्म, योग और राष्ट्रभक्ति गीता के सार है। संत कृपा और दादी के आशीर्वाद भाई जी के अंतः करण में उतरते चले गए। भाई जी की आयु 7 वर्ष की थी उसी समय साक्षात लक्ष्मी के रूप में बहन कमला का जन्म हुआ। रतनगढ़ में ही रहने वाले वैष्णव संत मेहरदास जो परमभागवत थे, उनके शिष्य बृजदास से दादी ने भाई जी को वैष्णव मंत्र की दीक्षा दिला दी। उसी वर्ष उनका उपनयन संस्कार भी हुआ। यज्ञोपवीत के पश्चात वेदारम्भ हुआ। भाई जी ने अल्प समय में श्री गणेश, श्री हनुमान, लक्ष्मी जी आदि देवताओं की उपासना के सारे मंत्र कंठस्थ कर लिए। नवरात्रि के समय भाई जी दुर्गासप्तशती का सस्वर पाठ करने लग गए थे। भागवत के अनेक स्तुतियों को श्रद्धा पूर्वक पाठ करना उनकी वृत्ति बन गई थी।

भाई जी को अब अपने परिवार की जिम्मेदारी संभालना आवश्यक हो गया था। 1901 ईसवी में वे पिताजी के सहयोग के लिए कलकत्ता चले गए, 9 वर्ष की अवस्था में ही। लेकिन नियति की क्रूरता अभी थमी नहीं थी। उनकी दूसरी माता का देहावसान भी 1902 में हो गया। सामाजिक

सनातन धर्म के सिद्धांतों की चर्चा शहर से विद्वानों को बुलाकर कराई जाती थी। भाई जी अपने पिताजी के साथ व्यवसाय में पूरी तरह लगे ही थे, साथ में दादी जी की आज्ञा और पिताजी के सहयोग से साधु संतों की सेवा एवं धार्मिक कार्यों में पूरी रुचि लेने लगे थे। 1905 ई. में लार्ड कर्जन ने बंग भंग की घोषणा की। अंग्रेजों का उद्देश्य था कि भारत को विभिन्न भागों में बांट कर उसकी राष्ट्रीय एकता को कमजोर किया जाए जिससे 1857 की सम्मिलित पुनरावृति न हो सके।

आग्रह के कारण इनके पिताजी को तीसरा विवाह गौराबाई से करना पड़ा। भाई जी को तीसरी माता से भी उतना स्नेह प्राप्त होता रहा। 1925 में छोटी बहन पूर्णीबाई का जन्म हुआ। इनके पिताजी व्यापारी के साथ-साथ अच्छे सामाजिक कार्यकर्ता थे। भाई जी का सहयोग प्राप्त होने के कारण कम समय में ही व्यापार की स्थिति बहुत अच्छी हो गई। पारिवारिक संस्कारों के कारण व्यापार के साथ-साथ संत सेवा, सत्संग, चरित्र निर्माण व सामाजिक कार्यों में भी भाई जी एवं उनके पिताजी का पूर्ण सहयोग एवं योगदान रहता था।

भाई जी के पिताजी ने अपने मित्रों के सहयोग से 'सनातन धर्म पुष्टिकारिणी सभा' की स्थापना की थी। जिसके परिप्रेक्ष्य में कभी दुकान में ही या कहीं और कभी अपने इष्ट मित्रों के साथ बैठकर महाभारत और रामायण के प्रेरणा प्रसंगों को सुनाया करते थे। कभी रेडियो के समाचार, अखबारों में छपे समाचारों के माध्यम से देश-विदेश में होने वाले परिवर्तनों की विशद चर्चा सभा में हुआ करती थी। सनातन धर्म के सिद्धांतों की चर्चा शहर से विद्वानों को बुलाकर कराई जाती थी। भाई जी अपने पिताजी के साथ व्यवसाय में पूरी तरह लगे ही थे, साथ में दादी जी की आज्ञा और पिताजी के सहयोग से साधु संतों की सेवा एवं धार्मिक कार्यों में पूरी रुचि लेने लगे थे। 1905 ई. में लार्ड कर्जन ने बंग भंग की घोषणा की। अंग्रेजों का उद्देश्य था कि भारत को विभिन्न भागों में बांट कर उसकी राष्ट्रीय एकता को कमजोर किया जाए जिससे 1857 की सम्मिलित पुनरावृति न हो सके। उस समय का बंगाल स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों का गढ़ बन गया था। लाल-बाल-पाल के नेतृत्व में वंदे मातरम के नारों के साथ बंगाल राष्ट्रभक्ति के चरम पर था। 7 अगस्त 1905 को कासिम बाजार में मणीन्द्र चंद्र नंदी के नेतृत्व में हजारों लोगों द्वारा विरोध प्रदर्शन हुआ। उस सभा में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का निर्णय हुआ। बंगाल के हर गांव में बंग-भंग का विरोध चल रहा था। सभाओं में स्वदेशी व्रत लिया जाता था तथा उसमें यह प्रतिज्ञा की जाती थी कि 'सर्व समर्थ ईश्वर से प्रार्थना है कि इस बात के साक्षी हो...हम अपने भविष्य परंपरा के समक्ष खड़े होकर यह व्रत लेते हैं कि यथासंभव हम देश में बनी हुई वस्तुओं का ही व्यवहार करेंगे तथा विदेश में बनी हुई वस्तुओं के व्यवहार से बचेंगे। ईश्वर हम लोगों के इस व्रत में सहायक हो'।

इसे स्वदेशी व्रत के रूप में पूरे देश में प्रचार मिला। इसका प्रभाव भाई जी के बालमन पर पड़ा। उस समय भाई जी की आयु केवल 13 वर्ष की थी। भाई जी ने निश्चय किया कि आज से मैं भी स्वदेशी वस्त्र ही पहनूंगा। लेकिन समस्या यह थी कि अंग्रेजों के षड्यंत्र के कारण बंगाल की वस्त्र बनाने की दस्तकारी विदेशी वस्त्रों के सामने समाप्त प्राय हो गई थी। ढाका के मलमल की कल्पना करना भी बेमानी हो गया था। ऐसी स्थिति में गांव के जुलाहों द्वारा निर्मित कपड़ा ही उपलब्ध था। इतना आसान भी नहीं था क्योंकि कपड़े इतने मोटे होते थे कि इसकी सिलाई बहुत कठिन थी। इस समस्या के समाधान के लिए भाई जी ने बिना सिले वस्त्र ही 2 वर्ष तक उपयोग किये। चद्दर ओढ़कर के कुछ काम चलाया लेकिन स्वदेशी आंदोलन के प्रभाव से साल दो साल में ही अच्छे वस्त्र बनने लग गए तब भाई जी ने कमीज पहनना प्रारंभ किया। बालपन के इस निश्चय का भाई जी ने जीवन पर्यंत पालन किया और आजीवन खादी वस्त्रों का उपयोग करते रहे। इंडियन नेशनल कांग्रेस का अधिवेशन कोलकाता में हुआ, जिसकी अध्यक्षता दादा भाई नौरोजी ने किया। राष्ट्रभक्ति से ओतप्रोत भाई जी ने किशोरावस्था में ही कांग्रेस की सदस्यता स्वीकार कर की। उस समय बंग-भंग आंदोलन में कांग्रेस दो भागों में बंट गई थी। लोकमान्य तिलक गरम दल का नेतृत्व करते थे। भाई जी ने गरम दल का पक्ष ही स्वीकार किया। अतः भाई जी ने गरम दल में ही अपना योगदान देना प्रारंभ कर कर दिया। इसके दो कारण थे एक तो नरम दल में सामान्यतया अधिक उम्र के लोग काम कर रहे थे और गरम दल में किशोर और युवा का वर्चस्व था। लोकमान्य तिलक के विचारों के नजदीक होने के कारण गरम दल के क्रियाकलापों में कार्य करना उनके मनोनुकूल था। उस समय गरम दल के लोगों ने अपने कार्य को गति देने के लिए अनेक समितियों का निर्माण किया। जैसे समाज सुधार समिति, मारवाड़ी युवा समिति,

साहित्य संवर्धिनी समिति, मारवाड़ी सहायक समिति। यह समिति युवाओं में ध्येय सिद्धि के लिए उत्तेजक साहित्य का निर्माण कर बांटती थी और देशभक्ति जागृत करने के लिए अनेक प्रकार के आयोजन कर दिया करती थी। इसी समिति ने महान क्रांतिकारी श्री विष्णु परालकर के नेतृत्व में गीता का अनुवाद सहित एक पुस्तक की रचना की। जिस के आवरण पृष्ठ पर भारत माता का तेजोमय चित्र था जो दाहिने हाथ में गीता तथा बाएं हाथ में खड्ग़ धारण किए हुए थी। देश भक्ति को धार्मिक रूप देने में श्रीमद्भागवत गीता और स्वामी विवेकानंद के वेदांत दर्शन का सहारा लिया जाए। इस आवरण पृष्ठ के द्वारा भारतीय परंपरा में उद्धत 'अग्रत चत्वारि वेदान पृष्ठतः संसरः धनु इदम शास्त्रम इदम शास्त्रम सपादपि' के भाव युवा मन को उद्वेलित कर रहा था। इस गीता की हजारों प्रतियां बांटी गई। ब्रिटिश प्रशासन ने उस आवरण पृष्ठ का अर्थ लगाते हुए उसे राज्य द्रोही क्रियाकलाप की श्रेणी में रखा और उस पुस्तक को जब्त कर लिया गया। लेकिन भाई जी ने उस पुस्तक का लोगों पर प्रभाव और ब्रितानी सत्ता की घबराहट को देखते हुए उसकी कई हजार प्रतियां छपवा कर सारे समाज में बटवा दिया। इस प्रकार व्यवसाय के साथ साथ राष्ट्र कार्य को करते रहे। भाई जी का जीवन कभी सुगम नहीं रहा। पिताजी अस्वस्थ रहने लगे, व्यवसाय का सारा कार्यभार भाई जी के कंधे पर छोड़कर वापस रतनगढ़ चले गए जहां उसी वर्ष अपने मातृभूमि में अपने काया को विलीन कर दिया।

शिलांग भूकंप के बाद व्यवसाय अव्यवस्थित होने, दादा जी की मृत्यु और पिताजी की मृत्यु को देखते हुए भाई जी के मन में यह विचार बार-बार आने लगा था कि व्यवसाय वृत्ति का साधन हो सकता है, किंतु प्रवृत्ति मर्यादित है। इसके कारण व्यवसाय से उनका मन उचटने लगा था। इसलिए उन्होंने अपना ज्यादा समय धार्मिक, सामाजिक और क्रांतिकारी कार्यों में लगाने लगे। दुकान का काम ढीला पड़ गया। परमार्थ के सामने अर्थ को झुकना पड़ा। उसी समय महात्मा गांधी अफ्रीका से लौटे थे। अल्फ्रेड थिएटर में उनके स्वागत कार्यक्रम का आयोजन किया गया था। उस कार्यक्रम के सचिव के नाते महात्मा गांधी जी से पहली मुलाकात हुई और मुंबई जाकर गांधी जी और भाई जी ने एक दूसरे को समझने, जानने का स्वाभाविक संबंध स्थापित हुआ, जो जीवन पर्यंत चलता रहा। 1916 ई. में काशी हिंदू विश्वविद्यालय के संकल्प को लेकर महामना मदन मोहन मालवीय अर्थ और भाव संग्रह में लगे थे। इसी उद्देश्य से मालवीय जी का कोलकाता जाना हुआ। व्यापारियों की एक बड़ी बैठक में मालवीय जी ने काशी हिंदू विश्वविद्यालय निर्माण हेतु आर्थिक सहयोग के लिए आग्रह किया। अपेक्षित सहयोग नहीं मिलने पर भाई जी स्वयं मालवीय जी से मिले और उन्होंने युवा मारवाड़ी संघ के सहयोग से प्रचुर मात्रा में धन और सहयोग उपलब्ध कराया। परिणाम स्वरूप दोनों का आंतरिक संबंध प्रगाढ़ हुआ जो जीवन पर्यंत चलता रहा। इस प्रकार राष्ट्र कार्य में लगे हुए अनेक महापुरुषों से भाई जी की अंतरंगता बढ़ती गई। इन्हीं दिनों क्रांति के अग्रदूत यतींद्र नाथ दास (1904-1929) से मालवीय जी की भेंट हुई। भाई जी इनके साथ स्वदेश बांधव समिति के सदस्य बन गए और अंग्रेजों के दमनकारी नीतियों का प्रतिरोध करने का एक सशक्त आधार प्राप्त हो गया। यह समिति बाहर से देखने में तो समाज सुधारवादी लगती थी लेकिन अंदर से यह ब्रितानी नीतियों का प्रतिरोध सशस्त्र करती थी। इसके सदस्यों को गीता की पुस्तक हाथ में लेकर यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि प्राण दे देंगे लेकिन संगठन को धोखा नहीं देंगे। एक बार समिति के कुछ सदस्यों को देशनिकाला दे दिया गया तो उनके पक्ष में भाई जी ने बहुत सारे सबूत और दस्तावेजइकट्ठा किए जिससे न्यायालय में उनके पक्ष में बातें रखी जा सके, जिसके कारण भाई जी का नाम पुलिस डायरी में एक क्रांतिकारी के रूप में आ गया। संदेह के दायरे में आने से भाई जी पर वारंट हो गया और उनकी घर की तलाशी ली गई। मिला तो कुछ भी नहीं इसलिए भाई जी की गिरफ्तारी नहीं हो सकी। लेकिन घरवालों का चिंतित होना स्वाभाविक था। जैसे हमारी सामाजिक परंपरा है, परिवार को लगा कि भाई जी का विवाह कर दिया जाए तो परिवारिक जिम्मेदारियों में बंध करके अपना व्यवसाय सुचारू रूप से चलाएगा और क्रांतिकारियों से अलग रहेंगे जिससे फिरंगी सरकार क कोपभाजन बनने से बच जाएंगे। माताजी के प्रयास से वैशाख कृष्ण तृतीय वर्ष 1916 (संवत 1973) गुवाहाटी निवासी श्री सीताराम संगानेरिया की पुत्री रामदेवी से भाई जी का शुभविवाह हो गया। इससे भाई जी के कार्य क्षेत्र पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। एक घटना का वर्णन करना इसमें आवश्यक है, अगस्त 1914 में कोलकाता के एक फर्म ने जर्मनी से 50 रिवाल्वर व 46000 कारतूस मंगाने की योजना बनाई थी। समिति के संज्ञान में यह बातें आते ही 'शठे शाठ्यम् समाचरेत्' की नीति के अनुसार उस पिस्तौल और कारतूस को गायब कर क्रांतिकारी कार्यों में प्रयोग करने की योजना बनाई गई। बाबूराव विष्णु पडालकर के कुशल संयोजन में इस कार्य को अंजाम दिया गया था। सारे पिस्तौल और कारतूस क्रांतिकारियों में बांट दिया गया। फिरंगी सरकार इस योजना को पता नहीं लगा पाई जिसमें भाई जी की भूमिका थी। 16 अगस्त 1916 को संदेह के दायरे में राजद्रोह के आरोप में उनके अनेक साथियों को गिरफ्तार कर लिया गया और 15 दिनों तक मिरांडा हाउस

में पुलिस ट्रायल पर रखा गया बाद में अलीपुर जेल में भेज दिया गया।

सात्विक मन और धार्मिक प्रवृत्ति भाई को जेल में जाने पर दुख हुआ तथा नया राष्ट्रीय वातावरण उनके चारों तरफ घिर आया। जेल में पहले से बहुत से क्रांतिकारी बंधु थे। उस समय के महान क्रांतिकारी ज्वाला प्रसाद से उनकी भेंट हुई लेकिन उनको लगा अस्सरण के शरण में जा करके ही सही दिशा की अपेक्षा की जा सकती है। फिर राधा मुकुंद भगवान श्री कृष्ण के अवलम्ब में ही उस समय की सार्थकता को देखा। नाम जप और ईशभक्ति के द्वारा शक्ति की साधना का सहज उपाय मिल गया था जिसके कारण मन शांत हुआ।अवसाद से मुक्त हुआ और नाम की महिमा का आभास हुआ। नाम जप के लिए माला की आवश्यकता थी बहुत प्रयास के बाद भी जेल में नामजप के लिए माला उपलब्ध न हो सकी तो उन्होंने वैकल्पिक उपाय सोचा और नीचे पड़ी लोहे की कील का सहारा लिया। वे नाम जप करते थे और कील से दीवार पर एक लकीर खींच देते थे। इस तरह नाम जप के माध्यम से भाई जी के आध्यात्मिक उन्नति का, शरणागति का,समर्पण का, धार्मिक संवेदना और सर्वोच्च सत्ता में महत्त्व का सूत्रपात यहीं से दृढ़ होने लगा। लेकिन सरकार को कोई पक्का सबूत नहीं मिलने के कारण उन पर मुकदमा चलाना संभव नहीं हो सका, लेकिन सरकार को संदेह पक्का था इसलिए उनको बांकुड़ा के सिमलापाल गांव में नजरबंद रखा गया। नजरबंद के काल में भगवत भजन, सरकारी काम में थाने में आए हुए डाक को छांटना और आवश्यकतानुसार उसका उत्तर लिखना। यह काम उनके जिम्मे था। स्वभाव में सेवा कार्य था, प्रभु की प्राप्ति में भजन के साथ-साथ सेवा कार्य भी एक महत्वपूर्ण आयाम है। इसलिए उन्होंने होम्योपैथी की बहुत सारी पुस्तकों का अध्ययन एवं अभ्यास प्रारंभ किया। उसके माध्यम से गांव के गरीब लोगों की चिकित्सा प्रारंभ कर दी कुछ दिनों के पश्चात अपने पत्नी को साथ रखने की अनुमति मिल गई। दोनों लोग मिलकर समाज की सेवा के माध्यम से उस गांव में अपने को स्थापित कर लिया। इस सजा को एक अवसर के रूप में भाई जी ने परिवर्तित कर दिया। दो महीने के बाद उनको इस शर्त पर रिहा किया गया कि वह 24 घंटे के अंदर बंगाल को छोड़ दें और फिर बंगाल में कभी दिखाई न दे। भाई जी ने इसे स्वीकार कर परिवार सहित वापस राजस्थान के रतनगढ़ में अपने को स्थापित कर लिया।

जेल में पहले से बहुत से क्रांतिकारी बंधु थे। उस समय के महान क्रांतिकारी ज्वाला प्रसाद से उनकी भेंट हुई लेकिन उनको लगा अस्सरण के शरण में जा करके ही सही दिशा की अपेक्षा की जा सकती है। फिर राधा मुकुंद भगवान श्री कृष्ण के अवलम्ब में ही उस समय की सार्थकता को देखा। नाम जप और ईशभक्ति के द्वारा शक्ति की साधना का सहज उपाय मिल गया था जिसके कारण मन शांत हुआ।अवसाद से मुक्त हुआ और नाम की महिमा का आभास हुआ।

राजस्थान पूरे देश के साथ उस समय देश की स्वतंत्रता के लिए पूर्ण रूप से जागृत हो चुका था। एक क्रांतिकारी तथा सदपुरुष के रूप में भाई जी की ख्याति चारों तरफ थी। रतनगढ़ में भाई जी भगवत भक्ति तथा राष्ट्र शक्ति के जागरण के कार्य में लग गए थे तभी मुंबई के उद्योगपति सेठ जमुनालाल बजाज का पत्र उन्हें मिला। उनका आग्रह था कि मुंबई आ जाओ यहीं कुछ करेंगे। भाई जी मुंबई चले गए तथा सेठ जमुना लाल बजाज के एक फर्म का कार्य संभाल लिए। मुंबई उन दिनों लोकमान्य तिलक के कारण राजनीतिक गतिविधियों का केंद्र बन गया था। वही भाई जी की भेंट महात्मा गांधी, दादा भाई नौरोजी, सरदार पटेल, वीर सावरकर जैसे बड़े नेताओं से हो गई। अपनी बहन के कार्य से उन्हें बांकुड़ा जाना पड़ा जहां उनके रिश्तेदार सेठ जयदयाल जी गोयन्दका से उनकी मुलाकात हुई। सेठ जी गीता प्रवचन करते थे तथा कुछ पुस्तकों की भी रचना करते थे। उनको पता था कि भाई जी कुछ लेख लिखते हैं इसलिए उन्होंने अपनी दो पुस्तकें भाई जी को दी जिसमें भाषिक सुधार की अपेक्षा थी। बाद में वे मुंबई आए सुखानंद धर्मशाला में जयदयाल जी का 10 दिन का गीता पर प्रवचन चला। निर्णय लिया गया कि जयदयाल जी के जाने के बाद भी यह प्रवचन का कार्य चलता रहे। लोगों का आग्रह था कि गीता प्रवचन का आगे का कार्य भाई जी करें, क्योंकि भाई जी का गीता का ज्ञान अच्छा था और भगवत कृपा थी। थोड़े संकोच के साथ ही भाई जी ने प्रवचन का कार्य स्वीकार कर लिया और अंत तक चलता रहा।

एक बार दिल्ली में मारवाड़ी अग्रवाल महासभा का वार्षिक अधिवेशन होने वाला था। जमुनालाल बजाज उसकी अध्यक्षता करने वाले थे। वह चाहते थे कि स्वागत भाषण भाई जी लिखे। भाई जी ने वह स्वागत भाषण

लिखा। वह स्वागत भाषण इतना गंभीर था कि वहां आए सेठ घनश्याम दास जी बिड़ला ने एक प्रस्ताव रखा कि भाई जी के संपादकत्व में अपने विचारों को रखने वाली कोई पत्रिका आनी चाहिए जिससे अपने विचार सर्व दूर तक जाते रहे। प्रस्ताव पर विचार हुआ। भाई जी ने उस पत्रिका का नाम कल्याण सुझाया। भाई जी के प्रस्ताव का सभी ने अनुमोदन किया। कल्याण पत्रिका निकले यह निश्चित हो गया। इसका प्रथम प्रकाशन श्रावण कृष्ण एकादशी संवत 1893 (अगस्त 1926) में हुआ। गांधी जी का मानना था कि इस पत्रिका में विज्ञापन या किसी पुस्तक की समीक्षा न छापी जाय, जिसका निर्वाह अभी तक हो रहा है। पहले अंक की संख्या 1600 थी। लगभग 13 महीने में मुंबई से निकली। भाई जी पूरी तन्मयता से कार्य कर रहे थे लेकिन उनके जीवन का उद्देश्य नाम कीर्तन के माध्यम से ईश्वर की प्राप्ति ही था। वो एकांत चाहते थे, इसलिए घनश्यामदास बिड़ला के सहयोग से कल्याण का प्रकाशन उत्तर प्रदेश के गोरखपुर से हो, ऐसा निश्चित किया गया। अगस्त 1927 उर्दू बाजार के एक कमरे से प्रारंभ किया गया। जुलाई 1928 में गीता प्रेस की स्थापना हुई। गीता प्रेस की स्थापना के पश्चात भाई जी का मन भगवत भक्ति के माध्यम से राष्ट्रभक्ति की तरफ उन्मुख हो गया था। जयदयाल गोयन्दका जी उस समय बिहार के प्रवास पर थे, बिहार जाकर भाई जी ने उनसे अपने मन की बात की। भाई जी ने बताया कि मेरे मन की भावना भगवत भक्ति है। सेठ जी की प्रेरणा से ईश्वर की अनुभूति भाई जी को हो गई। जब भाई जी गोरखपुर आए उस समय कल्याण के ग्राहक संख्या 4000 हो गई। विक्रम संवत 1985 में 'भक्तांक' नाम का विशेषांक निकाला गया, जिसके कारण सर्व दूर कल्याण का विस्तार हो गया। कल्याण की मांग इतनी बढ़ गई कि और ग्राहक बनाना मुश्किल हो गया।

गीता प्रेस के माध्यम से देश भर की जागृति के लिए धर्माधिष्ठित समाज की स्थापना के उद्देश्य लेकर भाई जी ने उत्तर भारत की गहन यात्रा की जिसमें अनेक साधु-संत, साधक और विद्वान उनके संपर्क में आए। सेठ जी ने रामचरितमानस के माध्यम से पराधीनता की बेड़ियों को काटने के लिए एक प्रयोग किया, इसमें गीता की छोटी गुटका और रामचरितमानस भाषा टीका की गुटका लाखों की संख्या में सस्ते मूल्य पर घर-घर पहुंचाने का कार्य किया। 1934 में 'कल्पतरु' नाम से 'कल्याण' का अंग्रेजी अनुवाद निकाला गया, जिससे गैर हिंदी भाषी क्षेत्रों में भी भगवत् चर्चा के माध्यम से पहुंचा जा सके। एकांत साधना के लिए गोरखपुर बाजार से बाहर एक स्थान का चयन हुआ जिसे आज गीता वाटिका के रूप में हम जानते हैं। राधा बाबा के साथ गीता वाटिका में अखंड संकीर्तन प्रारंभ हुआ। एक बार नेहरु जी गोरखपुर आए थे, अंग्रेजी शासन ने उनको किसी प्रकार का साधन उपलब्ध कराने पर प्रतिबंध लगा दिया था। लेकिन भाई जी ने उन्हें अपनी कार देकर देशभक्ति का परिचय दिया। नेहरू जी गीता वाटिका आए थे, उन्होंने गीता प्रेस के कार्यों की प्रशंसा की। 1969 में स्वास्थ्य में गिरावट आने लगी। राधा बाबा उनके साथ रहते थे। राजस्थान से दिल्ली आते समय उनकी चिकित्सा दिल्ली में कराई गई, बवासीर की शिकायत का पता चला और औषधियों से वेदना कम हुई, किंतु ऋषिकेश के प्रवास में उनके पेट में असहाय पीड़ा हुई, निदान से पता चला कि बहुत दर्द कैंसर का है। डॉक्टर ऑपरेशन करना चाहते थे लेकिन भाई जी ने ऑपरेशन से मना कर दिया। 22 मार्च 1971 को अपनी तपस्थली गीता वाटिका, गोरखपुर में भारत माता को अपना पार्थिव शरीर समर्पित कर गोलोकवासी हो गए। जन्म के समय सभी मानव के मुख से अनिवार्य रूप से एक शब्द प्रस्फुटित होता है, वह है 'को हम' मैं कौन हूं?। तत्वदर्शी व साधकों ने जीवन का लक्ष्य इस प्रश्न के उत्तर में लगाया है। मृत्यु के पूर्व उर्धश्वांस होने पर जो सवाल उठता है वह होता है 'सोहम'। 'कोहम' से 'सोहम' की यात्रा ही जीवन है। भाई जी ने उस तत्व को भगवत भक्ति के माध्यम से जाना था। देश की परतंत्रता की बेड़ियों को काटने के लिए देश के अनेकानेक हुतात्माओं ने अपने-अपने यंत्रों का प्रयोग किया था। एक तरफ महात्मा गांधी जी ने सत्य व अहिंसा के सहारे, वीर सावरकर ने भारतीय स्वाभिमान जागृत कर, सुभाष चंद्र बोस जी ने सैन्य बल का संगठन कर, लोकमान्य तिलक ने श्री गणेश पूजा के माध्यम से समाज को जागृत कर, देश की स्वतंत्रता में अपना योगदान दिया था। स्वदेशी के माध्यम से भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में प्रवेश कर भाई जी ने धर्म ग्रंथों के आधार पर धर्मधिष्ठित समाज की स्थापना कर राष्ट्र को स्वतंत्र करने का जो व्रत लिया था वह अपने जीवन काल में ही पूर्ण होने के पश्चात समाज का प्रबोधन और राष्ट्र के निर्माण में उन्हीं संसाधनों का भरपूर प्रयोग कर राष्ट्र की दिशा को धर्मोन्मुखी बनाने में सफल रहे। उनके द्वारा किए प्रयासों के माध्यम से गीता, रामचरित मानस, कल्याण, कल्पतरु, इत्यादि ग्रंथ आज विश्व में भारत का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

ऐसे क्रांतिकारी, ऐसे संत, ऐसे महाभागवत, ऐसे समाज सुधारक जैसे सारे मानवीय गुणों का आशय हम सब के लिए अपने को जानने तथा अपने जीवन की सार्थकता सिद्ध करने में सफल होगी।

समदर्शी दर्शन

कैप्टन सुभाष ओझा

भारतीय सनातन सभ्यता के मूल में विश्वास, आदर्श विचार, संस्थाओं और प्राथमिकता का ही नाम सनातन धर्म है। सनातन समदर्शी दर्शन है। सनातन वांग्मय युगो युगो से रहा है सतयुग कालखंड लगभग पूरा जनश्रुति पर रहा। श्रुतियों का स्मृति संग्रह ही सनातन की संस्कृति रही। युगो के पन्ने पलटने पर हम देखते हैं कि त्रेता युग में ऋग्वेद का वांग्मय लेखन विश्वामित्र, वशिष्ठ, वाल्मीकि आदि मनीषियों ऋषियों ने प्रारंभ किया जिसे अनेक तपस्वी के तपत्याग शोध ध्यवन योग त्रिकाल दर्शिता समाधि अनुभव मंत्रों का संग्रह होता रहा। राम राज्य की स्थापना भी इस युग में हुई थी अब द्वापर युग आया। एक ऐसे महामानव का जन्म होता है जो 16 कलाओं से परिपूर्ण थे भगवान श्री कृष्ण द्वारा श्रीमद् भागवत गीता के उपदेश ने पूरी दुनिया की नई राह बनाई और सभ्यता का विकास पुनः अंतिम चरण तक पहुंच गया जिसमें महाभारत का युद्ध होता है। आणविक हथियारों का भी प्रयोग दिखाई पड़ता है सनातन नए तरीके से पल्लवित होता रहा। इसमें 5000 वर्ष कलयुग का भी योग किया जाए तो कई करोड़ वर्ष या उससे अधिक का वांग्मय श्रुति है। इतना पुरातन जटिल गणनाअभी आधुनिकविज्ञान के लिए कठिन है। भारत की भौगोलिक, प्राकृतिक रचना भी सनातन के प्राकट्य का आधारभूत तत्व है। ईश्वर प्रदत्त वातावरण ने भारत को आध्यात्मिक केंद्र बनाया है।

जम्बू द्वीप में नौ खंड है इलावृत, भद्राश्व, किंपुरुष, भारत, हरि, केतुमाल, रम्यक, कुरु और हिरण्यमय। इनमें भारतवर्ष ही मृत्युलोक है, शेष देवलोक हैं। इसके चतुर्दिक लवण सागर है। दुनिया में सभी जगह सिर्फ देवदूत आते हैं भारत में ईश्वर का अवतरण होता है जिसमें सृष्टि के आदि देव महादेव के डमरु से स्वर व्याकरण प्रस्फुटित हुए हैं। इस व्याकरण का अवतरण ऋषि पाणिनि द्वारा मृत्युलोक में किया गया। पाणिनि वेद का अंशावतार है। पाणिनि ने रुद्राष्टाध्याई की संस्कृत में सूत्रों की रचना की। विश्व की सबसे पुरानी सभ्यता के सर्वाधिक अवशेष, सिंधु सरस्वती नदी घाटी में पाए गए हैं । भारत के राज्य हरियाणा में पाए गए साक्ष्य प्रमाण से इतिहासकार यह मानते हैं कि यह 4000 वर्ष पूर्व सरस्वती नदी सूख गई थी। रोम, मेसोपोटामिया, इजिप्ट, चीन और ग्रीस सभ्यता से अधिक समृद्धि सनातन संस्कृति रही है। जिसके 1840 जगहों पर सिंधु सरस्वती के अवशेष मिले हैं। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो के अवशेष पाकिस्तान से मिले हैं। मध्य प्रदेश के भीमबेटका में 25000 वर्ष पुराने शैल चित्र और नर्मदा घाटी के साक्ष्य बताते हैं कि यह विश्व की एकमात्र जीवित सभ्यता है।

“ विश्व की सबसे पुरानी सभ्यता के सर्वाधिक अवशेष, सिंधु सरस्वती नदी घाटी में पाए गए हैं। भारत के राज्य हरियाणा में पाए गए साक्ष्य प्रमाण से इतिहासकार यह मानते हैं कि यह 4000 वर्ष पूर्व सरस्वती नदी सूख गई थी। रोम मेसोपोटामिया इजिप्ट चीन और ग्रीस सभ्यता से अधिक समृद्धि सनातन संस्कृति रही है।

यह आदिमानव की प्राचीनतम विकास की कर्म भूमि रही है। इसी समय वैदिक सभ्यता के सोपान की नींव रखी गई । वहीं पर विश्व सभ्यता को समग्रता में हम देखते हैं कि 2000 ई.पू. से लेकर ईरान की सभ्यता रही है और वहीं 1450 से 150 ग्रीस सभ्यता के अवशेष जम्बू द्वीप में नौ खंड है इलावृत, भद्राश्व, किंपुरुष, भारत, हरि, केतुमाल, रम्यक, कुरु और हिरण्यमय। इनमें भारतवर्ष ही मृत्युलोक है, शेष देवलोक हैं। इसके चतुर्दिक लवण सागर है। दुनिया में सभी

(लेखक उच्च न्यायालय लखनऊ पीठ में अधिवक्ता एवं राष्ट्रवादी चिंतक हैं।)

जगह सिर्फ देवदूत आते हैं भारत में ईश्वर का अवतरण होता है जिसमें सृष्टि के आदि देव महादेव के डमरु से स्वर व्याकरण प्रस्फुटित हुए हैं। इस व्याकरण का अवतरण ऋषि पाणिनि द्वारा मृत्युलोक में किया गया। पाणिनि वेद का अंशावतार है। पाणिनि ने रुद्राष्टाध्याई की संस्कृत में सूत्रों की रचना की। विश्व की सबसे पुरानी सभ्यता के सर्वाधिक अवशेष, सिंधु सरस्वती नदी घाटी में पाए गए हैं । भारत के राज्य हरियाणा में पाए गए साक्ष्य प्रमाण से इतिहासकार यह मानते हैं कि यह 4000 वर्ष पूर्व सरस्वती नदी सूख गई थी। रोम, मेसोपोटामिया, इजिप्ट, चीन और ग्रीस सभ्यता से अधिक समृद्धि सनातन संस्कृति रही है। जिसके 1840 जगहों पर सिंधु सरस्वती के अवशेष मिले हैं। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो के अवशेष पाकिस्तान से मिले हैं। मध्य प्रदेश के भीमबेटका में 25000 वर्ष पुराने शैल चित्र और नर्मदा घाटी के साक्ष्य बताते हैं कि यह विश्व की एकमात्र जीवित सभ्यता है।

लगभग 3500 ईसवी पूर्व महाभारत का युद्ध हुआ था महाभारत के पूर्व, भारत में एक पूर्ण विकसित सनातन सभ्यता रही है। यूनेस्को ने 1800 से 1500 ई.पू. ऋग्वेद का लिपि कालखंड मानते हुए 30 पांडुलिपियों को सांस्कृतिक धरोहर में रखा है जबकि यूनेस्को द्वारा निर्धारित कालखंड को साक्ष्य के आधार पर, भारत का सनातन सांस्कृतिक इतिहास पूर्णतया खंडित करता है। वर्तमान में विश्व के सैकड़ों स्थानों पर हो रहे उत्खनन और वहां से हजारों वर्ष पूर्व में प्राप्त सनातन सभ्यता के साक्ष्य भी यूनेस्को और उससे संबद्ध इतिहासकारों के आकलन को पूर्णतया स्वीकार कर रहे हैं। संपूर्ण विश्व के मानवीय मूल्यों, जीवन पद्धति और प्रकृति पोषक एकमात्र सनातन संस्कृति ही रही है।

सनातन सभ्यता के मौलिक साहित्य में विस्तार से वर्णन हुआ है हमें ज्ञात है कि ऋग्वेद दुनिया का आधारभूत प्रथम साहित्य है। संस्कृत समस्त यूरोपीय भाषाओं की जननी है इसे समस्त भाषा शास्त्री स्वीकारते हैं कि दुनिया को गिनना भारत ने सिखाया और आर्यभट्ट ने 0 (शून्य) का ज्ञान कराया। मिस्त्र

और रोम में सबसे बड़ा अंक 106 तक ही था जबकि भारत में बहुत पहले से 1053 तक गणित में गिना जाता था। बीज गणित, त्रिकोणमति, ज्यामिति आदि विद्याओं का आविष्कार भारत में हुआ था। एक तरफ दुनिया के महाद्वीप स्वर से परिचित तक नहीं थे, वही सनातन संस्कृति ने सामवेद में गीत गाए थे। जिस 'नेविगेशन' शब्द का पश्चिमी विश्व प्रयोग करता है उसका जन्म संस्कृत के 'नेविगेशन' शब्द से हुआ है। सनातन सभ्यता दुनिया की समृद्धतम अर्थव्यवस्था थी। समृद्धि और संस्कृति का संयमित संयोजन सनातन में रहा है वहीं धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का संतुलन सनातन सिखाता है । सनातन की आभा संपूर्ण विश्व में व्याप्त रहे इसके लिए सनातन शास्त्रीय जनों ने कृषि, सिंचाई, धातु-विज्ञान, वस्त्र उत्पादन, आयुर्वेद, गणित में जो उपलब्धियां हासिल की उसी आधार पर समस्त विश्व ने कार्य किया है। सनातन से विश्व को गणतंत्र राज्यों और राज्यों की सृष्टि मीमांसाओ और विज्ञान, कला, कविता, स्मारक, मंदिर, राजमहल, लोक-निर्माण, भौतिक-विज्ञान, मनोविज्ञान, योग की प्रणाली, राजनीति और प्रशासन की पद्धतियां, अध्यात्मिक कलाओं, व्यापार उद्योग, ललित कला, हस्तकलाओं की अनंत विकास यात्रा का प्रवाह बनता रहा है। उपनिषदों के स्वर को बौद्ध और ईसा मसीह के होठों पर गुंजित होते रहे हैं।

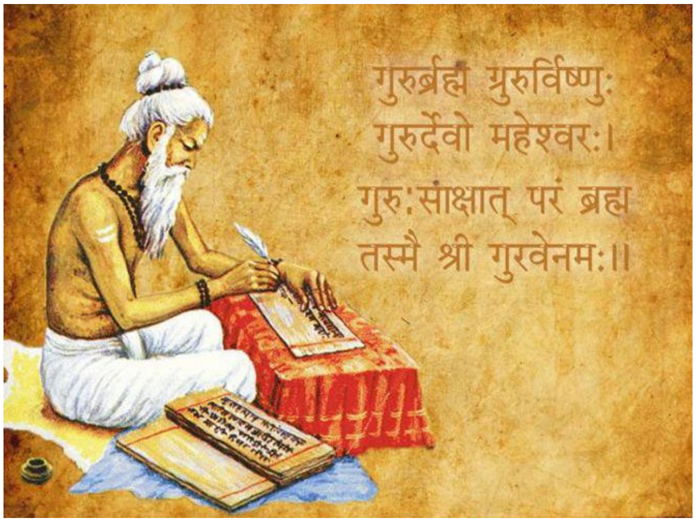

हजारों साल के ज्ञात इतिहास में भारत ने किसी दूसरे देश पर कोई हमला नहीं किया शायद यही कारण रहा कि सनातन का सांस्कृतिक विस्तार चीन से लेकर मेसोपोटामिया की रेतो में पाए जाते हैं इसका एक उदाहरण समीचीन है कि भारत ने चीन में एक भी सैनिक नहीं भेजा, रक्त की एक भी बूंद नहीं गिराई फिर भी चीन 2000 साल तक सनातन संस्कृत के पूर्ण प्रभाव में रहा। तभी महान वैज्ञानिक आइंस्टीन ने कहा है कि - " मानवता के विकास में भारत के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता।" यह योग बल सनातन संस्कृत के कारण है। मानवता सनातन रूपी पालने में उसका पालन-पोषण हुआ जिसमें फली-फूली है। सनातन जीवन जीने की विशेष शैली है। योग,आयुर्वेद व्रत, भोजन, पानी, निद्रा, ध्यान, कर्म, मन, बुद्धि और विचार की संपूर्ण जानकारी है। सनातन में धर्म की स्थापना दूसरों के हितों के लिए की गई है जिसे आधुनिक विज्ञान भी मानता है जब दुनिया के अन्य हिस्सों में लोग पढ़ना-लिखना और सभ्य होना सीख रहे थे तो दूसरी ओर सनातन के देश भारत में विक्रमादित्य, पाणिनि, चाणक्य जैसे विद्वान व्याकरण, अर्थशास्त्र के नए आयाम गढ़ रहे थे। आर्यभट्ट व वाराहमिहिर के अंतरिक्षविज्ञान का शोध कर रहे थे वसुबंधु, धर्मपाल, विष्णु, रक्षिता नागार्जुन, पद्मसंभव जैसे लोग जिस विश्वविद्यालय में पढ़ते थे वे सिर्फ भारत में थे। मैनचेस्टर यूनिवर्सिटी ने स्वीकार किया कि न्यूटन के जन्म के 250 साल पहले से उपनिषदों के श्लोकों में और जम्बू द्वीप में नौ खंड है इलावृत, भद्राश्व, किंपुरुष, भारत, हरि, केतुमाल, रम्यक, कुरु और हिरण्यमय। इनमें भारतवर्ष ही मृत्युलोक है, शेष देवलोक हैं। इसके चतुर्दिक लवण सागर है। दुनिया में सभी जगह सिर्फ देवदूत आते हैं भारत में ईश्वर का अवतरण होता है जिसमें सृष्टि के आदि देव महादेव के डमरु से स्वर व्याकरण प्रस्फुटित हुए हैं। इस व्याकरण का अवतरण ऋषि पाणिनि द्वारा मृत्युलोक में किया गया। पाणिनि वेद का अंशावतार है। पाणिनि ने रुद्राष्टाध्याई की संस्कृत में सूत्रों की रचना की। विश्व की सबसे पुरानी सभ्यता के सर्वाधिक अवशेष, सिंधु सरस्वती नदी घाटी में पाए गए हैं। भारत के राज्य हरियाणा में पाए गए साक्ष्य प्रमाण से इतिहासकार यह मानते हैं कि यह 4000 वर्ष पूर्व सरस्वती नदी सूख गई थी। रोम, मेसोपोटामिया, इजिप्ट, चीन और ग्रीस सभ्यता से अधिक समृद्धि सनातन संस्कृति रही है। जिसके 1840 जगहों पर सिंधु सरस्वती के अवशेष मिले हैं। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो के अवशेष पाकिस्तान से मिले हैं। मध्य प्रदेश के भीमबेटका में 25000 वर्ष पुराने शैल चित्र और नर्मदा घाटी के साक्ष्य बताते हैं कि यह विश्व की एकमात्र जीवित सभ्यता है।

विज्ञान और विकास सनातन की देन

जीवन की गति संस्कृति है और संस्कृति को आधार प्रकृति देती है। सनातन का समग्र जीवन दर्शन, प्रकृति का दर्शन है, प्रकृति का सौंदर्य है और सौंदर्य में शिव हैं, शिव ही सत्य है, 'सत्यम शिवम सुंदरम' समस्त संसार के सुख की कामना सनातन ने की है। सनातन जीवन पद्धती में मातृ-शक्ति को विशेष महत्व दिया गया है। प्राचीन काल से स्थापित 51 शक्ति पीठों के माध्यम से शक्ति का प्रक्षेपण होता है जिससे समस्त सृष्टि ऊर्जा पाती है। सनातन के मातृ-त्रिकोण में माता, गौमाता और पृथ्वी माता है जिनमें गौमाता का संरक्षण और संवर्धन माता द्वारा किया जाता है और गौमाता के उत्सर्जन से पृथ्वी माता की उर्वरा शक्ति

बढ़ती है जिसमें भगवान भास्कर सूर्य की वर्ष भर उपस्थिति समस्त भू-भाग पर रहती है। यह मातृ शक्ति सनातन को परिवार, समाज, संसार में संतुलन का पाठ पढ़ाती है। यही जीव जगत और पर्यावरण के संतुलन को भी सवंर्धित करती है।

समस्त विश्व भारत को विश्व गुरु के रूप में मानता रहा है। सनातन की शक्ति को पहचान कर आत्मनिर्भर भारत की पहचान के नए स्मृत स्तंभ बनाएंगे । सभ्यता के बिंदु स्थिर होते हैं। यदि सभ्यता पर बहस या बहकावे में आकर समाज भटक जाए तो देश के मानवीय मूल्यों में गिरावट आती है । जैसे राम हमारी सभ्यता हैं राम की पूजा पद्धति संस्कृति है। भारत के उच्चतम न्यायालय ने सभ्यता पर मुहर लगाई । जो त्याग करें वही बड़ा, जो भोगे वह छोटा, यही सनातन संस्कृति है ।

सनातन भारत में प्राचीन काल में शल्यक्रिया के लिए 127 तरह के उपकरणों का प्रयोग होता था। सुश्रुत संहिता में 300 प्रकार के ऑपरेशन का उल्लेख मिलता है। आठवीं शताब्दी में सुश्रुत संहिता का अरबी भाषा में 'किताब सुश्रुत' नाम से अनुवाद हुआ था। सुश्रुत संहिता में 184 अध्याय हैं जिनमें 1120 रोगों 700 औषधीय पौधों, जंतु स्रोतों के 5-7 तथा आठ प्रकार की शल्य का उल्लेख हुआ है।

एक दिलचस्प घटना

1780 में कर्नल कूट नामक एक अंग्रेज ने हैदर अली पर मैसूर में हमला किया। हैदर अली ने अंग्रेजों को परास्त किया और कर्नल कूट की नाक काट ली, कर्नल अपनी कटी हुई नाक हाथ में लेकर मैसूर राज्य की सीमा से आगे बेलगांव नामक गांव में एक बैद्य के पास पहुंचा उसने सुश्रुत संहिता के आधार पर लाखों वर्ष पुरानी, चिकित्सा पद्धति द्वारा अन्वेषित प्लास्टिक सर्जरी से नाक को जोड़ दिया और तीस दिन तक वैद्य ने कर्नल का पूर्ण चिकित्सा उपचार किया। कर्नल कूट ने ब्रिटिश पार्लियामेंट में खड़े होकर भाषण दिया कि हमें भारत के गुरुकुल से प्लास्टिक सर्जरी की विद्या सीखनी चाहिए। इस सनातन विज्ञान का आधार मानवता और परोपकार सेवा, ईश्वर प्रेम का पथ रहा है।

ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय

राधा-कृष्ण, रुक्मिणी और मीरा के नैसर्गिक प्रेम की व्याख्या पुराण और भक्त करते हैं। प्रकृति प्रेम और मानवता ही सनातन है। ईश्वर अविनाशी है और संसार की नश्वरता के साथ आत्मा, अजर और अमर है। सनातन के त्योहार भी मौसम विज्ञान की परंपरा पर रखे गए हैं। खान-पान, भाषा, वेश-भूषा ,भोजन-भजन और भवन भी प्रकृति आधारित हैं जिन्हें स्थानीय भौगोलिक रचना के आधार पर स्थापित किया गया है। ईसाई और इस्लाम संप्रदायों ने सनातन संस्कृति और उसकी स्थापनाओं को भयंकर क्षति पहुंचाई। प्रकृति के शोषण की परंपरा भी ईसाइयत से आई। प्रकृति और मानवता को खंडित करके, संप्रदाय स्थापित करने का उन्माद इस्लाम ने सिखाया। समस्त विश्व में सनातन ही प्राचीन धर्म रहा है। देश को सरकार चलाती है और राष्ट्र को समाज चलाता है ।मजहब का एक पैगंबर होता है, धर्म ब्रह्मांड की रचना है जब तक सृष्टि है, तब तक सनातन है। यूरोप के शासकों ने यूरोपियों को भारतीयों से श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए, वेदों के ज्ञान और ऋषियों के अविष्कारों को अपने नाम से प्रकाशित कराया। उदाहरण के लिए महर्षि पतंजलि के व्याकरण महाभाष्य में गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत प्रतिपादित किया गया है।

वर्तमान में जनसंख्या की दृष्टि से भारत दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा देश है और दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र वाला भी देश है। भारत की अर्थव्यवस्था विश्व की बढ़ती अर्थव्यवस्था में से एक है। प्रवासी भारतीयों ने भी सनातन संस्कृति का प्रसार 48 देशों मे लगभग दो करोड़ जनमानस द्वारा किया जा रहा है। नए युग में नई पीढ़ी सनातन परंपरा को आगे बढ़ा रही हैं लगभग पांच लाख प्रवासी विदेशों में वहां की अर्थव्यवस्था व राजनीति तय करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, व्यापारी शिक्षक, अनुसंधानकर्ता, खोजकर्ता ,डॉक्टर, वकील ,इंजीनियर, प्रबंधक ,प्रशासक राजनेता के रूप में दुनिया भर में अपनाए गए हैं। भारत के सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 4ः धन प्रवासी भारतीयों द्वारा आता है। सभी प्रवासी सनातन परंपरा और संस्कृति के संपूर्ण वाहक हैं। आज भी चीन में सनातन का योग और ध्यान लोकप्रिय है पूरी दुनिया ने योग दिवस 21 जून को पूरे उत्साह के साथ मनाना शुरू किया है। वर्तमान में भी सनातन पूरी दुनिया को सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामया अर्थात् समस्त संसार सुखी और आरोग्य हो इसी कामना के साथ भारत प्रगति कर रहा है।

चीन में कहावत है- अच्छा कर्म करो, अगला जन्म भारत में हो। सनातन के प्रति प्रबल आस्था पुनर्जागृत हुई है। अमेरिका के राष्ट्रपति से लेकर अभिनेता तक मंत्र, योग भक्ति अपना रहे हैंऔर श्री हनुमान जी को भी भज रहे हैं। दक्षिणी गोलार्ध में सबसे बड़ा शिव मंदिर मेलबर्न, ऑस्ट्रेलिया की सरकार की सहायता से निर्मित हो रहा है। अरब अमीरात में मंदिर का निर्माण हो रहा है तो यूरोप में सनातन धर्म के प्रति विशेष आकर्षण जीवन पद्धति के साथ जुड़ गई है। जहां एक तरफ इस्लामी आतंकवाद से दुनिया त्रस्त है, वहीं सनातन शांति का अद्भुत केंद्र है। धर्म सम्राट स्वामी करपात्री जी ने जयघोष दिया था- धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो, प्राणियों में सद्भावना हो विश्व का कल्याण हो। ऐसा दुनिया में एकमात्र धर्म सनातन है इसीलिए भारत विश्व गुरु रहा है और रहेगा।

आलेख

सृष्टि, संस्कृति और प्रकृति

सनातन संस्कृति में सृष्टि का आधार प्रकृति है। इसमे जगत की सम्पूर्ण अवधारणा ही प्रकृति के सभी अवयवों को समेकित कर निरूपित की गई है। जब सनातन संस्कृति वसुधैव कुटुम्बकम का उद्घोष करती है तो इसमे केवल मनुष्य नही होते। इस उद्घोष में प्रकृति के वे सभी घटक शामिल होते हैं जो सृष्टि में उपस्थित है।

अनिता अग्रवाल

गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्रीहनुमान चालीसा में युग सहस्त्र जोजन पर भानू, यानी धरती से सूर्य की वास्तविक दूरी की गणना लिखी है। उसी तुलसी दास जी ने लिखा है कि सम्पाती नाम के गिद्ध ने सौ जोजन अर्थात 1200 किमी की दूरी पर अशोक वाटिका में सीता जी के होने की सूचना हनुमान जी , जामवंत जी और उस पूरे समूह को दिया जो सीता जी का पता लगाने निकले थे। पर्वत तो इतने महत्वपूर्ण हैं कि माता पार्वती का नाम ही पर्वत पुत्री के कारण पड़ा है।

(लेखिका प्रख्यात साहित्यकार, कवयित्री और संस्कृति पर्व की सहायक सम्पादक हैं।)

हमारी महान प्राचीन संस्कृति के प्रामाणिक ग्रंथ बताते हैं कि एक युग ऐसा भी होता है जिसमे सृष्टि के सभी घटक यानी मनुष्य, पशु, पक्षी, यक्ष, किन्नर, गंधर्व, देव, सुर, असुर, वनस्पतियां, वृक्ष, नदी, जंगल, पर्वत, वायु, आकाश, अग्नि आदि सभी का आपस मे संबंध और संवाद भी होता रहा है। पृथ्वी के चक्रवर्ती सम्राट महाराज दशरथ का जटायु और सम्पाती जैसे गिद्ध समुदाय के पक्षियों से संवाद और उनकी मित्रता के प्रमाण आदि महाकाव्य श्रीमद रामायण और फिर श्रीमद्रामचरितमानस में प्रामाणिक रूप से मिलता है। मैं प्राचीनता के विराट स्वरूप में अभी नही जाना चाहती। गिद्ध जैसी पक्षी प्रजाति की महत्ता को लेकर हमारी विरासत अत्यंत गंभीर है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्रीहनुमान चालीसा में युग सहस्त्र जोजन पर भानू, यानी धरती से सूर्य की वास्तविक दूरी की गणना लिखी है। उसी तुलसी दास जी ने लिखा है कि सम्पाती नाम के गिद्ध ने सौ जोजन अर्थात 1200 किमी की दूरी पर अशोक वाटिका में सीता जी के होने की सूचना हनुमान जी , जामवंत जी और उस पूरे समूह को दिया जो सीता जी का पता लगाने निकले थे। पर्वत तो इतने महत्वपूर्ण हैं कि माता पार्वती का नाम ही पर्वत पुत्री के कारण पड़ा है। हिमालय और कैलाश तो आदिदेव भगवान शिव के आवास ही हैं। ऐसे प्रमाण और कथाओं से सनातन वांग्मय भरा पड़ा है। माँ गंगा, यमुना ,सरस्वती, नर्मदा, गोदावरी, क्षिप्रा, कावेरी आदि नदियों के बिना सनातन की कल्पना भी कैसे हो सकती है। अग्नि तो सनातन के मूल में हैं। अग्नि देव द्वारा प्रदत्त चरु से तो भगवान राम, लक्ष्मण, भारत और शत्रुघ्न जी के अवतार ही हुए हैं।

ऐसे प्रमाण हैं कि धरती पर सबसे पहले आग की खोज भृगु ऋषि ने की थी,उन्होंने ही

बताया था कि किस तरह अग्नि को प्रज्वलित किया जा सकता है, और किस तरह हम अग्नि का उपयोग कर सकते हैं।भृगु ऋषि के द्वारा ही सर्व प्रथम अग्नि की पूजा प्रारम्भ हुई। सर्वप्रथम भृगु कुल के लोगों ने ही अग्नि की आराधना करना शुरू किया था, भृगु ऋषि के भाई अत्रि ऋषि के पुत्रों द्वारा ही भारत से इरान जाकर अग्नि पूजा शुरू की, आज भी पारसी लोग ऋषि भृगु की अथवन के रूप में पूजा करते हैं, पारसी धर्म के लोग भी अग्निपूजक हैं।

भृगु ने ही भृगु संहिता की रचना की, उसी काल में उनके भाई स्वायंभुव मनु ने मनु स्मृति की रचना की थी, भृगु के और भी पुत्र थे जैसे उशना, च्यवन आदि, ऋग्वेद में भृगुवंशी ऋषियों द्वारा रचित अनेक मंत्रों का वर्णन मिलता है जिसमें वेन, सोमाहुति, स्यूमरश्मि, भार्गव, आर्वि आदि का नाम आता है, भार्गवों को अग्निपूजक माना गया है। इनके रचित कुछ ग्रंथ हैं- भृगु स्मृति (आधुनिक मनुस्मृति), भृगु संहिता (ज्योतिष), भृगु संहिता (शिल्प), भृगु सूत्र, भृगु उपनिषद, भृगु गीता आदि, 'भृगु संहिता' आज भी उपलब्ध है जिसकी मूल प्रति नेपाल के पुस्तकालय में ताम्रपत्र पर सुरक्षित रखी है, इस विशालकाय ग्रंथ को कई बैलगाड़ियों पर लादकर ले जाया गया था, भारतवर्ष में भी कई हस्तलिखित प्रतियां पंडितों के पास उपलब्ध हैं किंतु वे अपूर्ण हैं। महर्षि भृगु का आयुर्वेद से भी घनिष्ठ संबंध था, अथर्ववेद एवं आयुर्वेद संबंधी प्राचीन ग्रंथों में स्थल-स्थल पर इनको प्रामाणिक आचार्य की भांति उल्लेखित किया गया है, आयुर्वेद में प्राकृतिक चिकित्सा का भी महत्व है, भृगु ऋषि ने सूर्य की किरणों द्वारा रोगों के उपशमन की चर्चा की है, वर्षा रूपी जल सूर्य की किरणों से प्रेरित होकर आता है, वह शल्य के समान पीड़ा देने वाले रोगों को दूर करने मे समर्थ है। तात्पर्य यह है कि भारत की सनातन संस्कृति जो वेदों से विकसित हुई, उन वैदिक ऋचाओं का मूल कथ्य ही प्रकृति के साथ सन्तुलन से जुड़ा है. जिसने वेदों का जरा भी अध्ययन न किया, वे वेदों को हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थ मात्र समझने की भूल करते हैं, जब कि वैदिक ज्ञान, किसी धर्म अथवा सम्प्रदाय से परे वह जीवन शैली है, जो सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण का रास्ता दिखाती है. हकीकत तो ये है कि वेदों में पंच महाभूतों को ही देवतुल्य स्थान दिया गया है और इन्हीं को सन्तुलित करना चराचर जगत के लिए कल्याणकारी बताया गया है. वैदिक ऋचाओं में इन्द्र, अग्नि व वरूण आदि का ही उल्लेख मिलता है. ईश्वर के साकार रूप से परे वेदों में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और क्षितिज ये ही हमारे उपास्य रहे हैं अथवा यों कहें कि इनका समन्वित स्वरूप प्रकृति अथवा कुदरत सर्वोच्च एवं आराध्य है।

जब हम लोकभाषा में आराधना करते हैं ना कि 'पंचनामा देवो दैण व्है जाया'' यानी पंचदेवों तुम हमारे अनकूल हो जाना, तो कहीं यह इन्हीं पंच महाभूतों की ओर ईशारा तो नहीं हैं ? अन्यथा सनातन संस्कृति में तो तैंतीस कोटि देवी-देवताओं को माना गया है, फिर पंच देवों से ही प्रार्थना क्यों की गयी है? अन्य देवी देवताओं का आर्विभाव भी इन्हीं पंचमहाभूतों के संरक्षण के पिष्टपेषण को दर्शाता है. ब्रह्मा सृजन के, शिव त्याग के, विष्णु संयम के, देवी भगवती पराक्रम की और बजरंगबली साहस के प्रतीक हैं. ये बात अलग है कि इन्सान ने अपनी क्षुद्र सुखों के लिए उनके संदेश को ग्रहण न करके, उन्हें मनोकामना पूर्ति के लिए आराध्य तो बना दिया, लेकिन उनके मार्ग का अनुसरण नही किया।

पर्यावरण प्रदूषण की समस्या आज इन्हीं पंचमहाभूतों की उपेक्षा एवं असन्तुलन का कारण है। इन पंचमहाभूतों की उपेक्षा जहां प्राकृतिक अथवा भौतिक पर्यावरण के लिए घातक बना, वहीं भगवान कृष्ण ने श्रीमद्भगवतगीता में तीन तत्व और सम्मिलित किये- जिसे मन, बुद्धि एवं अहंकार नाम दिया गया। ये तीन तत्व हमारे मानसिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक प्रदूषण को प्रभावित करते हैं। कहा गया है– 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' अर्थात् जो इस पिण्ड में वही व्यापक रूप में ब्रह्माण्ड में है. जीवों में इन पांचों तत्वों के असन्तुलन से शारीरिक व्याधिंया जन्म लेती है, ठीक उसी प्रकार प्रकृति में जब असन्तुलन होता है, तो प्राकृतिक आपदाऐं घटित होती हैं, जिन्हें हम दैवीय आपदा अथवा दैव प्रकोप मानकर अपना पल्ला झाड़ लेते हैं. हकीकत तो ये हैं कि प्राकृतिक आपदाऐं सारी की सारी मानव जनित है। यजुर्वेद का एक श्लोक हैः-

'ऊँ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षॅं शान्तिः, पृथ्वी शान्तिरापः
शान्तिरोषधयः शान्तिः, वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः
शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः, सर्व शान्तिः, शान्तिरेव शान्तिः, सा मा
शान्तिरेधि. ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

अर्थात् शान्ति कीजिए,प्रभु जल, थल और गगन में, अन्तरिक्ष में, अग्नि, पवन, औषधि, वन, उपवन में सकल विश्व में, अवचेतन में, जीव मात्र के तन, मन और जगत में कण-कण में शांति हो) प्रायः हर धार्मिक अनुष्ठान के प्रारम्भ में इस शान्ति पाठ से शुरुआत होती है. हम मंत्र रूप में इसका उच्चारण कर अथवा पुरोहित से करवाकर शान्ति की कामना तो करते हैं, लेकिन व्यवहार में प्रकृति के संरक्षण में इसके उलट हमारी गतिविधियां रहती हैं। सच तो ये है कि देव भी आपकी सहायता तभी कर सकता है, जब आप स्वयं अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए प्रयत्नशील हों। यही सनातन की अवधारणा है और पृथ्वी पर मानव सभ्यता का मूल भी। इसीलिए आज धरती के विभिन्न क्षेत्रों से जब सनातन वैदिक हिन्दू संस्कृति के प्रमाण प्राप्त हो रहे हैं तो इसमे कोई आश्चर्य है ही नही।

अंतिम संस्कार के लिए लकड़ी बैंक

सम्मानपूर्वक होना चाहिए मानव देह का अंतिम संस्कार: संजय राय 'शेरपुरिया'

संजय मानव

वह युवा हैं। उद्यमी हैं। अति संवेदनशील हैं। परोपकारी हैं। राष्ट्र भक्त हैं। मानवता के प्रति समर्पित हैं। प्रधान नरेन्द्र मोदी के आत्मनिर्भर भारत के उद्घोष को अंगीकार कर धरती पर उतार रहे हैं। गाजीपुर जनपद का शेरपुर गांव उनकी जन्म भूमि है। गुजरात उनके उद्यम की कर्म भूमि है। अपने गांव की माटी से अपनी सांसों को निरंतर जोड़े रखने वाले संजय राय ने अपने नाम के साथ अपने गांव को जोड़कर खुद को 'शेरपुरिया' के रूप में स्थापित कर लिया है। अपनी समग्र उद्यमिता के साथ-साथ उन्होंने अपने गांव और जिले की भी कायाकल्प की ठान ली है। सनातन संस्कारों से खुद को बांधे रखने वाले संजय राय शेरपुरिया ने मानव जीवन के अंतिम संस्कार को अति सम्मानपूर्ण बनाते हुए एक ऐसी योजना को व्यवहार में उतारा है। अपने गृह जनपद में मानव देह के अंतिम संस्कार के लिए उन्होंने लकड़ी बैंक की स्थापना कर यह सुनिश्चित करने का बीड़ा उठाया है कि किसी मनुष्य को उसकी अंतिम यात्रा के लिए मोहताज न होना पड़े। कोरोना जैसी महामारी के बाद मृत देह के अंतिम संस्कार की पीड़ा को उन्होंने बहुत करीब से महसूस करने के बाद लकड़ी बैंक का अभियान इसलिए शुरू किया ताकि किसी देह की अंतिम परिणति और उसका अंतिम संस्कार पूर्ण सम्मान के साथ हो सके। इस प्रयास को भारत ही नहीं बल्कि विश्व मीडिया ने बहुत महत्व दिया है।

लकड़ी बैंक की अवधारणा

संजय राय 'शेरपुरिया' ने जब भारत व विदेशी मीडिया चैनलों पर गंगा में तैरते हुए मानव शवों की खबरों को देखा तो वह बहुत विचलित हो गये। उन्होंने तत्कालही संकल्प लिया कि जनपद गाजीपुर में गंगा स्थित श्मशानघाटों पर जाकर वह स्थिति को देखकर शवों के दाहसंस्कारको उचित व्यवस्था करेंगे। उन्होंने सभी श्मशानघाटों पर लकड़ी की जबरदस्त कमी की समस्या को देखा, क्योंकि कोरोना महामारी के भयावह काल के चलते लोगों को बहुत अधिक मौतें हो रही हैं। इससे श्मशानघाटों पर लकड़ी का जबरदस्त अभाव हो गया था। इस परेशानी को देखते हुए उन्होंने तुरंत निदान करने के लिए श्मशानघाटों पर लकड़ी की कमी से कोई व्यक्ति शव को गंगा में यूं ही न फेके। इसलिए गाजीपुर में श्मशानघाट पर 'लकड़ी बैंक' बनाया। जिसमें कोई भी व्यक्ति लकड़ी दान कर सकता है। साथ ही जरूरतमंद व्यक्ति को निशुल्क लकड़ी लेकर अपनों के शव का अंतिम संस्कार पूरे विधि और सम्मान के साथ कर सकता है। फाउंडेशन की ओर से जिले के दस श्मशान घाटों पर लकड़ी बैंक खोला गया है। जिसके लिए बकायदे रोड मैप तैयार किया है, सभी जगह के लिए चार्ज भी नियुक्त किए गए हैं। वहां से निर्धन लोगों के शव का अंतिम संस्कार करने के लिए निशुल्क लकड़ी दी जा रही है। जिससे अब गाजीपुर में लकड़ी की कालाबाजारी पर लगाम लगी और लोगों को अग्नि संस्कार करने में लकड़ी की दिक्कत का समाधान हो गया है।

संजय राय शेरपुरिया की जीवन यात्रा

उत्तर प्रदेश के जनपद गाजीपुर के शेरपुर गांव की माटी का एक लाल मात्र 17 वर्ष की छोटी उम्र में जीवन को नयी दिशा देने के उद्देश्य से गुजरात के लिए निकला था। आज उस युवा ने 33 वर्ष के लंबे संघर्ष दिनरात की अथक मेहनत के बाद अपनी दूरदृष्टि बेहतरीन व्यापारिक रणनीति के बदौलत गुजरात जाकर एक बहुत बड़ा औधोगिक घराना तैयार कर लिया है, आज इस घराने का देश-विदेश में बहुत बड़ा व्यापार है। वह युवा आज बेहद सम्मान के साथ संजय राय 'शेरपुरिया' के नाम से जाना जाता है, जिसकी गिनती गुजरात के दिग्गज उद्योगपतियों में होती है। सनातन धर्म की परंपराओं को अक्षरशः अपने जीवन में उतारने वाले संजय राय 'शेरपुरिया' का हमेशा अपनी जन्मभूमि से विशेष लगाव रहा है। जिंदगी में परिस्थिति कैसी भी रही हो लेकिन उन्होंने कभी अपने गृह जनपद गाजीपुर को नहीं भूला। संजय राय 'शेरपुरिया' इसी विशेष लगाव की वजह से हमेशा अपने गृह जनपद के लिए कुछ ना कुछ जनहित व सामाजिक दायित्व का निर्वहन निरंतर करते रहते हैं।

संजय राय 'शेरपुरिया' का समाजसेवा का क्षेत्र सिर्फ गाजीपुर तक ही सीमित नही या देश के विभिन्न हिस्सों में समाजसेवा का कार्य कर रहे हैं। संजय राय 'शेरपुरिया' संबे समय से विभिन्न देशों से आये हिन्दूशरणार्थियों के जीवन को सरल बनाने के लिए लंबे समय से काम कर रहे है। दिल्ली स्थित मजलिस पार्क महाराणा प्रताप बस्ती में पाकिस्तान से आए हुए हिन्दू शरणार्थियों को देख-रेख का जिम्मा भी संजय राय 'शेरपुरिया' के हाथ में है।

'यूथ रूरल इंटरप्रेन्योर फाउंडेशन'

गाजीपुर का यह लाल अपने जनपद में काम करने वाली 'यूथ रूरल इंटरप्रेन्योर फाउंडेशन' के चेयरमैन भी है, जो कि गाजीपुर में विभिन क्षेत्रों में लगातार कार्यरत है। लेकिन जब से देश में कोरोना काल शुरू हुआ है तब से वे व्यक्तिगत रूप से

लोगों की खामोशी के साथ निरंतर हर संभव मदद करके उनके जीवन को बचाने के लिए प्रयास करते रहे है। कोरोना काल में संजय लोगों के जीवन को बचाने के लिए बड़े स्तर पर एक अभियान की शुरुआत की। जिसके तहत गाजीपुर के आम लोगों व जिले के सराकरी अस्पतालों के लिए मास्क, फेशशिल्ड पीपीई किट बेड़, आक्सीजन, दवाई, इंजेक्शन, कोरोनाजांचकिट, कोरोना के इलाज के लिए दवाईयों की किट, ऑक्सीजन कंसॉन्ट्रेटर आदि जैसी जीवन रक्षक वस्तुएं उपलब्ध करवाई गयी। उन्होंने जिस समय लोग एक-एक साँस लेने के लिए तड़प रहे थे उस भयावह आपदाकाल में गाजीपुर के जिलाधिकारी मंगला प्रसाद सिंह को आम लोगों के लिए 100 ऑक्सीजन कंसॉन्ट्रेटर उपलब्ध कराये। जिले के पुलिसकर्मियों के इलाज के लिए पुलिस लाइन में चल रहे अस्पताल के लिए दवाई व ऑक्सीजन कंसॉन्ट्रेटर पुलिस किसानको उपलब्ध करवाये।इसके बाद उन्होंने अलग-अलग जगह चिन्हित करके बड़े पैमाने पर लोगों को इलाज देने के लिए विभिन्न प्रकार की सुविधाएं आम लोगों व संस्थाओं को देना शुरू कर दिया, जिस अभियान के तहत उन्होंने यूपी रोडवेज के कर्मचारियों, चालक व परिचालकों को कोरोना की दवाएं और ऑक्सीजन कट्रिटर वितरित किये।कचहरी में सिविल बार एसोसिएशन, अधिवका परिषद एवं एसीएमओ डॉक्टर डीपी सिन्हा के सहयोग से अधिवकाओं और कर्मचारियों को निःशुल्क कोरोना जांच व वैक्सिनेशन तथा दवा वितरण कैम्प का आयोजन करवाया।

सेवा के संकल्प के साथ ग्रामीण भारत को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में पूर्ण मनायोग से जुटे हुए संजय राय की आंखों में वह सपना तैर रहा है जो सनातन संस्कृति और जीवन मूल्यों को सर्वाधिक महत्व देता है। कोरोना के संक्रमण के बीच जिस तरह से सेवा कार्य उन्होंने हाथ में लिया और गांवों में जिन जरूरतों की उनको अनुभूति हुई है उससे संजय राय शेरपुरिया के सपनों का विस्तार हुआ है।

उन्होंने जनपद के शादियाबाद स्थित ए.पी. जे. अब्दुल कलाम संस्था और जनपद की एक प्रमुख स्वयं सेवी संस्था 'समर्पण' को संरक्षिका सविता दीदी को और शहर के प्राचीन मंदिर बाबा बोराहिया आश्रम चीतनाथ संस्था ऑक्सीजन कंसॉन्ट्रेटर, मास्क, फेशशिल्ड तथा कोरोना दवाईयों के किट उपलब्झ करवाये। भुड़कुद मठ के महंत शत्रुप्न दास महाराज तथा समाजसेवी नीरज सिंह को ऑक्सीजन कंसॉन्ट्रेटर, मास्क, फेशशिल्ड तथा कोरोना दवाईयों का किट आम-जनमानस के इलाज के लिए उपलब्ध कराया। गाजीपुर के रोटरी क्लब संस्था को ऑक्सीजन कंसॉन्ट्रेटर, मास्क, फेशशिल्ड तथा दवाईयों के किट उपलब्ध कराये। ग्राम सभा मादपुर के लिए और युवा पत्रकार एवं समाजसेवी शशिकान्त तिवारी को कोरोना की दवा

कोरोना की दूसरी बेहद भयावह लहर में जब संजय राय 'शेरपुरिया' ने देश के विभिन्न राज्यों में धरातल पर बन रहे चिंताजनक हालात देखें, तो उन्हें अपने गृह जनपद गाजीपुर की याद आयी, जहां पर लोगों को केवल सरकारी व्यवस्था के द्वारा उपलब्ध इलाज के भरोसे छोड़ दिया जाता तो ना जाने कितने लोग असमय काल का ग्रास बन जाते। इसलिए संजय राय शेरपुरिया' ने तुरंत ही अपने निजी कार्यालय से गाजीपुर के लिए दवाई, इंजेक्शन, कोरोना जांच किट, कोरोना दवाई किटवइलाज के लिए आवश्यक अन्य सभी प्रकार के जरूरतमंद मेडिकल उपकरणों से युक्त चिकित्सा वाहनों का बंदोबस्त करके उस काफिले को लोगों के इलाज के लिए गाजीपुर भेज दिया, जिसके माध्यम से ना जाने कितने लोगों का अनमोल जीवन बचाया गया। ऐसा करके संजय राय 'शेरपुरिया' अब उधोगपति समाजसेवी के साथ एक निडर निर्भिक इंसान व इंसानियत की रक्षा करने वाले कोरोना वारियर्स बन गये हैं। कोरोना वायरस संक्रमण की भयावहता को देखते हुए उन्होंने अपने जीवन की परवाह किये बिना गाजीपुर के लोगों के अनमोल जीवन को बचाने के लिए अपनी समस्त टीम के साथ गाजीपुर आकर खुद मौके परमोर्चा सम्हाल लिया, भयावह आपदाकाल में जब लोग अपनी जान बचाने के लिए घरों में छिपे बैठे है उस समय संजय रायको हिम्मत की दाद देनी पडेगी, जो उन्होंने आम-जनमानस के जीवन को बचाने के लिए अपने जीवन को खतरे में डाल दिया। संजय राय'शेरपुरिया' ने अपनी समस्त टीम व अन्य लोगों में जोश लाने के लिए 'जन भागीदारी से जन कल्याण की ओर एक कदम' का नारा देते हुए. इस लक्ष्य के साथ धरातल पर बहुत तेजी के साथ कार्य करना शुरू किया कि कोरोना महामारी के समय में गाजीपुर के हर परिवार और हर व्यक्ति को मिले सम्पूर्ण इलाज। जिसमें वह काफी हद तक सफल भी रहे हैं।

का किट, मास्क, सेनेटाइजर आदि प्रदान किये।

उपरोक्त कार्य कोरोना आपदाकाल में संजय राय 'शेरपुरिया' के द्वारा किये गये जनहित के कार्यों की बानगी मात्र है, सभी का यहां विवरण देना संभव नहीं है। अच्छी बात यह है कि अब धीरे-धीरे गाजीपुर जनपद में कोरोना का प्रकोप काफी कम होना शुरू गया है, लेकिन संजय राय 'शेरपुरिया' का जीवन बचाओ अभियान बिना रुके बिना थके दिन-रात जारी है। उनका हमारा संकल्प - कोरोना महामारी के समय में, गाजीपुर के हर परिवार और हर व्यक्ति को मिले सम्पूर्ण इलाज अभियान निरंतर चल रहा है। वह लोगों को कोरोना वायरस से बचाव के उपायों के प्रति लगातार जागरूक करके वैक्सीन लगवाने के लिए प्रोत्साहित कर रहे हैं। 'दो गज की दूरी मास्क है जरूरी' की कोरोना काल में अहमियत समझा रहे है।

मनुष्य और मनुष्यता के लिए समर्पित

संजय राय शेरपुरिया के कार्यों का लेखा जोखा कुछ शब्दों में दे पाना कठिन है। महामारी के बीच स्वयं को खतरे में डालकर जिस प्रकार उन्होंने स्वयं और अपनी संस्था के माध्यम से जन सेवा के लिए तन मन धन से समर्पण दिखाया है वह अद्भुत है। यद्यपि वह एक उद्यमी हैं लेकिन कोराना संक्रमण के बीच जीवन मृत्यु से जूझ रहे लोगों की सेवा के लिए उन्होंने जिस रूप में अपने को प्रस्तुत किया है वह एक ऐसे सनातन मनुष्य का स्वरूप है जिसमें मनुष्यता केन्द्र में है। धन तो अनगितन लोग कमाते हैं ओर उसका उपभोग भी करते हैं लेकिन संजय राय ने आपदाकाल में मनुष्य और मनुष्यता के रक्षक के रूप में स्वयं को स्थापित किया है। व्यवसाय के साथ समाज सेवा की इतनी बड़ी मिसाल उन्होंने कायम की है जिसने उनके व्यक्तित्व को बहुत बड़ा बना दिया है। यह उनके भीतर का वह सनातन पुरुष है जो सेवा को जीवन का लक्ष्य बनाकर चल रहा है। सेवा के संकल्प के साथ ग्रामीण भारत को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में पूर्ण मनायोग से जुटे हुए संजय राय की आंखों में वह सपना तैर रहा है जो सनातन संस्कृति और जीवन मूल्यों को सर्वाधिक महत्व देता है। कोरोना के संक्रमण के बीच जिस तरह से सेवा कार्य उन्होंने हाथ में लिया और गांवों में जिन जरूरतों की उनको अनुभूति हुई है उससे संजय राय शेरपुरिया के सपनों का विस्तार हुआ है। गांव की समस्याएं और युवाओं की बेरोजगारी को समाप्त करने के लिए वह जी जान से जुटे हैं। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के आत्मनिर्भर भारत के संकल्प से खुद को जोड़ते हुए संजय राय ने गांव में कौशल विकास के लिए व्यापक योजना बनाई है और उस पर निरंतर कार्य कर रहे हैं। उनके कार्यों को दुनिया देख रही है और विदेशी मीडिया में भी उनके कार्यों का मूल्यांकन किया जा रहा है।

डॉ. भुवन मोहिनी

जागो सनातन

ओ सनातन धर्मियों जागो
स्वयं सबको जगाओ,
धर्म को जागृत करो फिर
धर्म तुम अपना निभाओ,

तुमने ही जग को सिखाया
शून्य का अभ्यास क्या है?
दशमलव का अर्थ क्या है
भूमि क्या आकाश क्या है?
तुमने ही श्री राम को धनु
बाण दे शिक्षित किया था,
तुमने ऋषियों ब्राह्मणों को
वेद में दीक्षित किया था,

फिर से विश्वामित्र बन श्रीराम
को वनपथ दिखाओ।
ओ सनातन....

विश्व सारा माँगता है फिर
तुम्हीं से चेतना स्वर,
बन विवेकानंद फिर दो
सृष्टि को ओंकार अक्षर,
लोक मंगल कामना में
विश्व तुम पर आश्रित है,
मंजिलें भटकी हुई हैं
रास्ते सब दिग्भ्रमित हैं।

फिर महाऋषियों के वैदिक
ज्ञान को आगे बढ़ाओ,
ओ सनातन ......

कर रहा फिर विश्व भर
आह्वान हे मनुसुत तुम्हारा,
हाथ में अब भी तुम्हारे है
रखा ब्रह्माण्ड सारा,
टूटने से तुम बचा सकते
हो अब अरमान युग का,
भरत वंशज है तुम्हारे हाथ
में सम्मान जग का।

बिखरती प्रज्ञा को मेधा को
पुनः मन में सजाओ,
ओ सनातन....

मुक्तक

1

विश्व पे संकट आ पड़ता तुम
सिन्धु का क्षार हलाहल पीते,
जीते सभी अपने लिए किन्तु
सुना तुम भक्त के भाव में जीते,
बाँट दिए जग को घर बार रहे
खुद ही घर द्वार से रीते,
माँगती भक्ति का मोल प्रभू यह
जीवन राम के संग ही बीते।

2

जीत गयी हर बाजी सदा तुमसे
मिली हार तुम्हारे लिए है
नैन से जो निकला पहला पहला
अख़बार तुम्हारे लिए है
प्रेम का ग्रंथ पढ़ो मुझमे इतना
अधिकार तुम्हारे लिए है
प्यार से देखो मुझे तो लगेगा कि
मेरा ये प्यार तुम्हारे लिए है

3

बाँह में ले लो मुझे अब तो यह
बाहों का हार तुम्हारे लिए है,
कंगन की धुन पायल की उठती
झनकार तुम्हारे लिए है
जीवन मौत है संग तेरे तन का
अवतार तुम्हारे लिए है
प्यार से देखो मुझे तो लगेगा कि
मेरा ये प्यार तुम्हारे लिए है।

4

इश्क़ में नाक जब कटती है
तब आगे से कटती है
रात फिर ये न सोने से न ही
जागे से कटती है
मोहब्बत इक पतंग है तुम
उडाओ लाख पर सुन लो
ये जिस धागे से उड़ती है
उसी धागे से कटती है।

प्रियांशु गजेन्द्र

मुक्तक

चाह ले राई पहाड़ करे वह चाहे पहाड़ को राई बनाए
चाहे तो भीख मंगा दे गली गली चाह के तो ठकुराई दिलाए
चाह ले वो दुर्योधन का घर त्याग दे साग विदूर के खाए,
चाह ले तो कुटिया में रहे चाहे स्वर्ण की लंका में आग लगाए।

0 न पढ़ना तुम कभी जग के महा संग्राम की चिट्ठी,
पढ़ो यदि पढ़ सको युद्धों के दुष्परिणाम की चिट्ठी,
थी जिन हाथों में तलवारें मिले वे हाथ मिट्टी में,
सिकंदर की पढ़ो चाहे पढ़ो सद्दाम की चिट्ठी।

उठो जागो हे भारत वीर

कनक मय धरती और आकाश,
नक्षत्रों का झिलमिल अनुप्रास,
चंद्रमा का रमणीय प्रकाश,
नित्य सूरज का क्रमिक विकास।

स्वर्ग की सुषमा ले अवतार,
करे भारत भू का सृंगार,
करे पद प्रक्षालित मनुहार,
विश्व विजयी वह पारावार।

सनातन मानवता का धर्म,
करे मानव मानव का कर्म,
जहां की बोली बानी नर्म,
दिखे गोरी के मुख पर शर्म,
उसी भारत में मेरा गाँव,
जहां पीपल करता है छांव,
न जाने राजनीति के दांव
छुए आदर से झुककर पाँव।

विश्व लेता हमसे संस्कार,
चले लढ़िया के पीछे कार,
बड़े जो विस्फोटक हथियार,
गए सब गाँधी जी से हार।

बहें मादक गीतों के छन्द,
पवन पुरवा बहती है मन्द,
बोलती दुनिया की थी बन्द
बोलते रहे विवेकानंद।

विषधरों के फ़न पर रख बीन
किया करते हैं हम आधीन,
हमारा पौरुष है प्राचीन,
चली है लंदन तक संगीन।

चले दुनिया में अनुसंधान,
रहा है ऐसा अपना ज्ञान,
समूची पृथ्वी की है शान,
विश्व विजयी है हिंदुस्तान।

उठो जागो हे भारत वीर,
उठाओ वेदों की शमशीर,
हरो सारी दुनिया की पीर,
तोड़कर आलस की जंजीर।

डॉ. जे बी अनुराग

1

मेरा मनुष्य होना, मेरी
सर्वोत्तम नियति है।

अपनी सहजता, सरलता,
सरसता में,
सुविचारित, परिभाषित हूँ
स्व केंद्र में,
नित्य का सतत अंश हूं,
सृष्टि वैभव हूं,
मेरा भी लक्ष्य है,
शाश्वत ऊँचाई है।

भेद उपभेद से मुक्त अभेद हूँ
अपने सत्व में,
राग रंजित आकर्षण
चमकाता है
ग्रह नक्षत्रों का तेज है मुझमें
मिला हुआ
अग्नि, आकाश, वायु, धरती,
जल से सम्बद्ध हूँ
अनन्य हूँ, विशिष्ट हूं, स्व
चेतना सम्पन्न हूं
मेरा भी लक्ष्य है,
शाश्वत ऊँचाई है।

अन्न, प्राण, मन, बुद्धि, विज्ञान,
आनन्दमय कोष
मेरे अस्तित्व, अस्मिता के
परिचायक है
शानदार विचार उत्सव
दिल दिमाग में, तरंगायित
होते हैं, पुलकित होता हूँ।

शुद्ध, पवित्र, वैध है मेरा
जीवन
ब्रह्म सागर लहराता है मेरे लिए
मेरा भी लक्ष्य हैं,
शाश्वत ऊँचाई है।

2

यह धरती गवाह बनेगी
छूट जाएंगी नश्वरताएँ
मैं तब भी रहूंगा
अनिवर्चनीय शब्दों में
जो अब भी तरंगायित हैं
रोम रोम रोमांचित करते हुए
खुशबू रहेगी
मेरे होने की
हरसिंगार गवाही देगा
अपनी दोस्ती निभाते हुए
जो अब भी महका रहा है
अप्रतिम स्वाद अशेष रह
जायेगा
तृप्त होना मेरा बीज की गवाही
बन जायेगा
रिश्ते मेरे स्पर्श सुख से
आपूरित हैं
जीवन कहानी यादगार हो
जाएगी
मैं रहूंगा प्रेरक प्रसंगों में
याद रह गए दृश्यों में
मेरा होना अनवरत
सक्रिय बना रहेगा।।
अपनी सक्रियता में
अदृश्य प्रेम हूं मैं।

विक्रमादित्य सिंह

रघुअंश

रघु अंश
क्या तेरा वंश ,क्या मेरा वंश ,
देख कण - कण में है उसी का अंश ,
न कुछ तेरा है , न कुछ मेरा है ,
यह रघु मुझको स्वयं बतलाये ||
फिर क्यों केवल तू रघु वंश कहलाये ?

जी आया मैं भविष्य का इतिहास,
दिखलाया मुझे कहाँ काल का वास ,
कहाँ हमें जाना है ,कहाँ से हम आये ,
यह रघु मुझको स्वयं बतलाये ||
फिर क्यों केवल तू रघु वंश कहलाये ?

आया मैं भी उसी से ,
आत्मसात होना है,उसी के पास ,
जैसे तेरे , वैसे मेरे श्वास,
यह रघु मुझको स्वयं बतलाये ||
फिर क्यों केवल तू रघु वंश कहलाये ?

मिट्टी में मिल कर, मिट्टी हो गया ,
रक्त तेरा-मेरा ,
जनम ले कर हो गया, ये तेरा-ये मेरा |
केवल इसलिए तू रघु वंश कहलाये?

देख, कण-कण में है उसी का अंश ,
क्या तेरा वंश, क्या मेरा वंश ||
फिर क्यों केवल तू रघु वंश कहलाये ?
देख !!
मैं भी हूँ , रघु अंश पर्याय !!
मैं भी हूँ ...रघु अंश पर्याय !!

डॉ. सीमा त्रिपाठी

सनातन संस्कृति

चिर सनातन विश्व का हुंकार भर के
युग युगों के स्वप्न को साकार कर के
सत्य-शिव-सुंदर को अंगीकार करके
नव सृजन का मंत्र गह लें ।
ध्येय पथ निर्माण कर लें ।।

सबल भुजाओं में रक्षित है धर्म सनातन
संस्कार से पोषित यह अक्षुण देवातन
चाहे जितने यत्न करो पर डिगे न आसन
श्रुति-स्मृति का ध्यान धर लें।
ध्येय पथ निर्माण कर लें ।।

दिग-दिगंत तक फैल रहा यशगान अनाहत
संस्कृति का यह सेतु कभी ना हुआ पराहत
'वसुधैव कुटुंब' में निखिल विश्व हो गया नियंत्रित
चिरप्रवाहित संस्कृति आह्वान कर लें।
ध्येय पथ निर्माण कर लें ।।

सत्य-अहिंसा-दया-क्षमा, जप-तप ही मूल में
जो सदा, सर्वदा, निर्लेप, निरंजन, निर्विकार में
बस वही सनातन शाश्वत सत्य बसा है प्राण में
इस अजन्मे पंथ का अनुगमन कर लें
ध्येय पथ निर्माण कर लें ।।

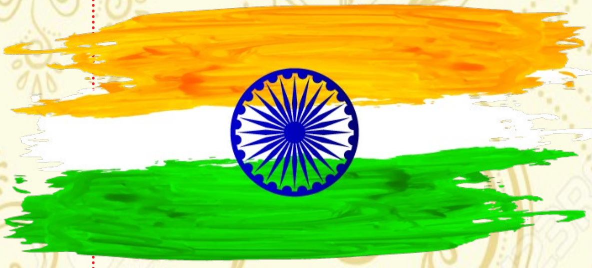

शशि पाण्डेय

नई पीढ़ी को बताइए

हिन्दी संस्कृत और अपनी संस्कृति को पहले आप भूले हैं बच्चे तो बाद में भूले हैं क्योंकि इन्हीं में संस्कार हैं वो आपने सिखाया नहीं, आज आप मानो तो ठीक है नहीं तो भगवान ने तो सबको जिन्दगी दी है, चल रही है और ये चलती रहेगी फ़िर अब आप संस्कार का रोना क्यों रोएं? जैसे संस्कार आपने अगली पीढ़ी को दिए, वैसे ही पीढ़ियां जिएंगी और उन्हीं संस्कारों का वो अनुसरण करेंगी।

अब आप अपनी संतान को कतई दोष न दीजिए! आपने ही तो उसे इंग्लिश मीडियम में पढ़ाया, अंग्रेजी बोलना सिखाया, बर्थ डे, वी डे और मैरिज एनिवर्सरी जैसे जीवन के शुभ प्रसंगों व दिवसों को अंग्रेजी संस्कृति में रूपांतरित तो आपने किया उस समय आपको स्वयं में श्रेष्ठता का अनुभव होता रहा।

मां पिता को मम्मा और डैड कहना तो आपने ही सिखाया उस समय आप को गर्व होता था, अब अंग्रेजी संस्कृति से परिपूर्ण बेटा जब बड़ा होकर आपको समय नहीं देता, वो आपकी भावनाओं को नहीं समझता, आपका तिरस्कार करता है, आपको तुच्छ पिछड़ा मानकर आपसे जबान लड़ाता है। कोई शर्म और लिहाज नहीं करता तो आपको महसूस होता होगा कि मेरे अपने बच्चों में संस्कार क्यों नहीं हैं?

उस समय आप घर के किनारे वातावरण को बिना गमगीन किए कहीं दूर जाकर छुप कर आंसू बहाते होंगे। इससे अच्छा होता कि कहीं एकान्त में जाकर आप अपने अनादर के भावों की तुष्टी के लिए अच्छे से रो लेते है न, क्योंकि पुत्र की पहली वर्षगांठ से भारतीय संस्कारों बड़ों को आदर देना, मन्दिर में प्रार्थना, हवन कुण्ड में आहुति कैसे डाली जाए के बजाए केक कैसे काटा जाए, ये तो आपने ही सिखाया था न...!

केवल फर्राटेदार अंग्रेजी बोलने वालों को ही अपनी शान समझने वाले तो आप ही थे, जब बच्चा बाहर निकला तो उसे प्रणाम आशीर्वाद के बजाए बाय बाय... कहना तो केवल आपने ही सिखाया। परीक्षा देने जाते समय इष्ट देव और बड़ों के पैर छूने के बदले बेस्ट ऑफ लक कह कर जाना और परीक्षा भवन के बाहर तो आप ही छोड़ने जाते रहे। बालक के सफ़ल होने पर घर परिवार में खुशियां मनाने के बदले में होटल रेस्टोरेंट में पार्टी मनाने, विवाह के बाद उसे हनीमून के लिए फारेंन ट्रिप में भेजने की सबसे पहले तैयारी तो आपने ही की थी। ऐसी ही ढेर सारी अंग्रेजी संस्कृति को जाने अनजाने में अपनाने वाले आप ही थे। उस समय बुजुर्गों के पैर छूने में आपके बेटे को शर्म आती थी उसमें किसकी गलती थी? उस समय गलती आपकी थी। अंग्रेजी भाषा को सीखना कतई बुरा नहीं है उस भाषा के सहारे जैसे आपने अपने बच्चों को अंग्रेजी संस्कृति को उतारने में गर्व महसूस किया गलती सिर्फ़ वहां थी। संस्कार एक दिन में नहीं उतरते संस्कारों को उतारने के लिए निरन्तर समय देना पड़ता है।

हिन्दी संस्कृत और अपनी संस्कृति को पहले आप भूले हैं बच्चे तो बाद में भूले हैं क्योंकि इन्हीं में संस्कार हैं वो आपने सिखाया नहीं, आज आप मानो तो ठीक है नहीं तो भगवान ने तो सबको जिन्दगी दी है, चल रही है और ये चलती रहेगी फ़िर अब आप संस्कार का रोना क्यों रोएं? जैसे संस्कार आपने अगली पीढ़ी को दिए, वैसे ही पीढ़ियां जिएंगी और उन्हीं संस्कारों का वो अनुसरण करेंगी। संस्कारों को दूसरी पीढी में परिवर्तित करने की जिम्मेदारी आपकी थी, सिर्फ आपकी! उस समय आप असफल रहे इसलिए अब पीढ़ियों को दोष देना उचित नहीं है।

संस्कृति पर्व
Sanskriti Parva

(भारत संस्कृति न्यास का प्रकल्प)

सदस्यता फॉर्म - SUBSCRIPTION FORM

नाम
NAME ____________________

पिता/पति
FATHER/HUSBAND ____________________

पत्रिका के लिए स्थाई डाक का पता
PERMANENT POSTAL ADDRESS FOR MAGAZINE ____________________

____

____

पिन कोड
PIN CODE ____________________

कन्ट्री कोड
COUNTRY CODE ____________________

ई-मेल
MAIL ID ____________________

मोबाइल नं०
MOBILE NO. ____________________

सदस्यता का प्रकार एवं शुल्क / TYPES OF MEMBERSHIP & FEE

	भारत में /IN INDIA	अप्रवासियों के लिए/FOR NRIs
वार्षिक/ANNUAL	1000/-	$100
त्रैवार्षिक/THREE YEARS	2500/-	$250
पंच वार्षिक/FIVE YEARS	5000/-	$400
आजीवन व्यक्ति/LIFETIME PERSON	11000/-	$750
आजीवन संस्था/LIFETIME INSTITUTION	21000/-	$1000

शुल्क का भुगतान नगद, ड्राफ्ट या चेक से किया जा सकता है। ऑनलाइन भुगतान पत्रिका के खाते में किया जा सकता है। चेक या ड्राफ्ट 'संस्कृतिपर्व प्रकाशन' के नाम होना चाहिए।

Account Detail

NAME : SANSKRITIPARVA PRAKASHAN,
BANK : HDFC, PRANAY TOWERS, LUCKNOW.
A/c NO. : 50200035311373 , IFSC : HDFC0000594, MICR : 226240002, BRANCH CODE: 000594

पंजीकृत कार्यालय : बी-64, आवास विकास कालोनी, सूरजकुंड, गोरखपुर-273001
लखनऊ कार्यालय : 2/43, विजय खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ-226010
दिल्ली कार्यालय : बी-38 डिफेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली-110024
सम्पर्क : + 91 94508 87186-87
यू.एस कार्यालयः 17413 Blackhawk St. Granada Hills, CA 91344 USA, Cell: 1-818-815-9826

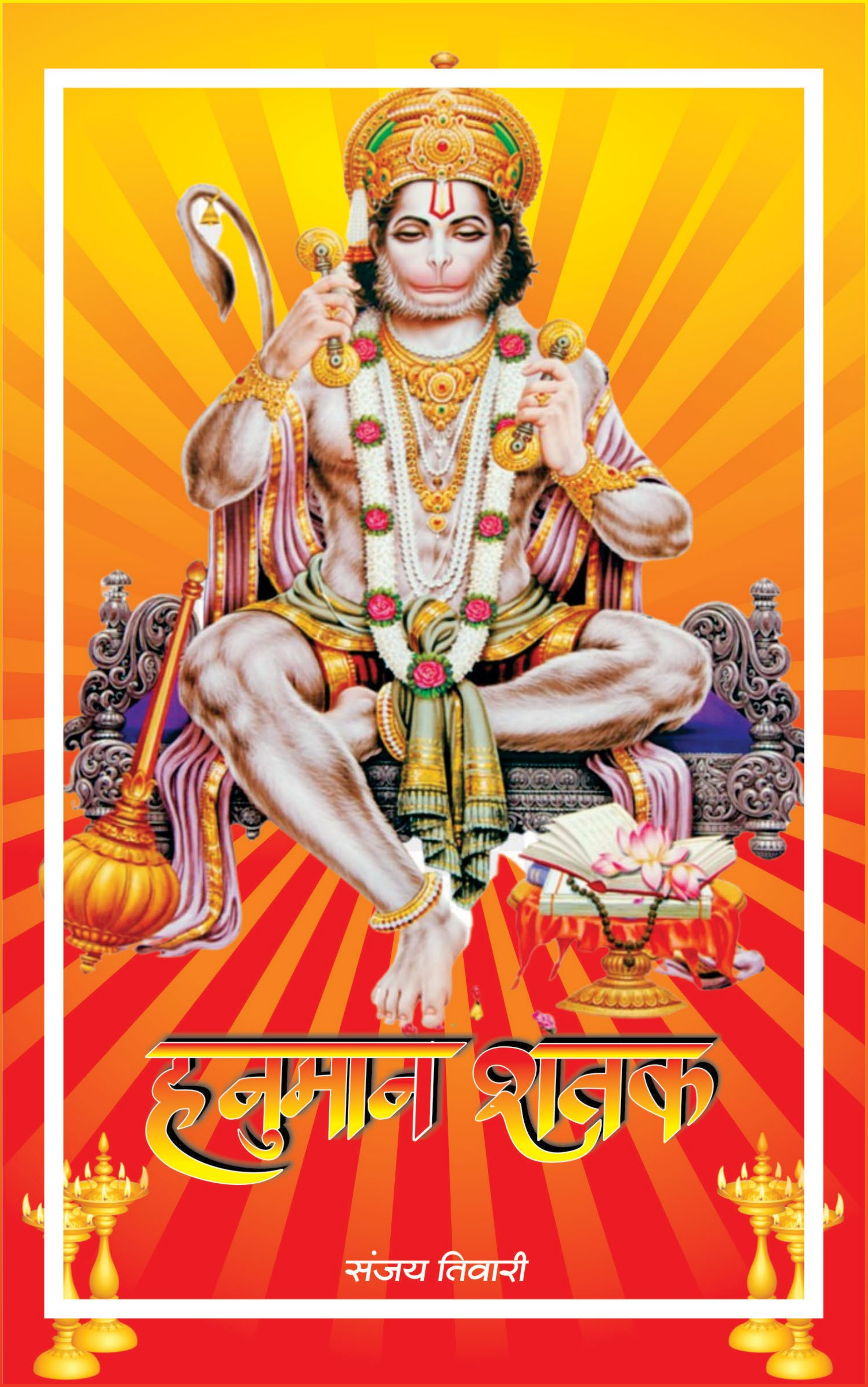
हनुमान शतक
संजय तिवारी

भारत संस्कृति न्यास

नवीन भारत, प्रवीण भारत
New India, Skilled India

उद्देश्य

- सनातन संस्कृति के संरक्षण, संवर्धन और प्रसार के लिए सतत प्रयत्नशील
- राष्ट्रीय संस्कृति विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए प्रयासरत
- प्राथमिक से स्नातक तक पाठ्यक्रम में संस्कृति शिक्षा को अनिवार्य रूप से शामिल कराने का प्रयास
- राष्ट्रीय संस्कृति आयोग का गठन एवं राष्ट्रीय संस्कृति दिवस के निर्धारण के लिए प्रयास

पत्र व्यवहार

बी–64, आवास विकास कालोनी, सूरजकुंड गोरखपुर–273001

1–454 वास्तुखण्ड, गोमती नगर लखनऊ–226010

✆ +91:–9450887186, +91:–9450887187

Follow us

पंजीकृत कार्यालय

बी–38, डिफेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली–110024

Contact : 011-24337573

bharatsanskritinyas@gmail.com

Website - www.bharatsanskritinyas.org